इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मानविकी विद्यापीठ

MHD-12
Hkkjrh; dgkuh

खंड

1

ey;kye] dUuM] rfey vkj r;yx Hkk"kk dh dgkfu;k

bdkbZ 1
^nhnh* % fo'y"k.k vkj eY;kdu 5

bdkbZ 2
yMdh ft l dh eu gR;k dh % fo'y"k.k vkj eY;kdu 23

bdkbZ 3
VfMy % fo'y"k.k vkj eY;kdu 30

bdkbZ 4
ik.k/kkjk % fo'y"k.k vkj eY;kdu 41

ikB;Øe fo'ks"kK lfefr

प्रो. दिलीप सिंह
कुलसचिव
दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा
चेन्नई

प्रो. एम. षणमुखन
अवकाश प्राप्त प्रोफेसर (हिन्दी)
विज्ञान और तकनीकी विश्वविद्यालय
कोचिन

प्रो. तेजस्वनी कट्टिमणि
कुलपति
इन्दिरा गांधी जनजातीय विश्वविद्यालय
अमरकंटक

प्रो. शम्भुनाथ
अवकाश प्राप्त प्रोफेसर (हिन्दी)
कलकत्ता विश्वविद्यालय, कोलकाता

प्रो. नवनीत चौहान
हिन्दी विभाग, सरदार पटेल विश्वविद्यालय
बल्लभ विद्यानगर, आणन्द

lnL; lnL;

प्रो. जवरीमल पारख
प्रो. सत्यकाम
प्रो. शत्रुघ्न कुमार
डॉ. स्मिता चतुर्वेदी
डॉ. जितेन्द्र कुमार श्रीवास्तव
(*पाठ्यक्रम संयोजक*)

ikB;Øe l;ktd

डॉ. जितेन्द्र कुमार श्रीवास्तव, हिन्दी संकाय
मानविकी विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली

[kM l;ktu] l'kk/ku ,o liknu

डॉ. जितेन्द्र कुमार श्रीवास्तव, हिन्दी संकाय
मानविकी विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली

ikB;Øe fuekZ.k lfefr

ikB ys[kd	bdkbZ l-
प्रो. एन षणमुखन अवकाश प्राप्त प्रोफेसर (हिन्दी विज्ञान और तकनीकी विश्वविद्यालय, कोचिन	1
डॉ. जितेन्द्र कुमार श्रीवास्तव हिन्दी संकाय मानविकी विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली	2
प्रो. अरुण होता प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, पश्चिम बंग राज्य विश्वविद्यालय, बारासात (कोलकाता)	3

ikB ys[kd	bdkbZ l-
डॉ. जे.एल. रेड्डी अवकाश प्राप्त उपाचार्य दयाल सिंह कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय	4

fo'ks"k lg;ksx

डॉ. नमिता सत्येन
डॉ. हरेश परमार
सुश्री भावना सरोहा

lfpoky;h lg;ksx

श्री नवल कुमार

lkexzh fuekZ.k

श्री सी. एन. पाण्डेय
अनुभाग अधिकारी (प्रकाशन)

फरवरी, 2017

©bfUnjk xka/kh jk"Vªh; eqDr fo'ofo|ky;] 2017

ISBN-978-93-86375-77-3

सर्वाधिकार सुरक्षित, इस कार्य का कोई भी अंश इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना किसी भी रूप में मिमियोग्राफ (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यथा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के बारे में अधिक जानकारी के लिए विश्वविद्यालय के कार्यालय, मैदान गढ़ी नई दिल्ली-110068 से सम्पर्क करें।

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की ओर से प्रो. सत्यकाम, निदेशक मानविकी विद्यापीठ द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

ystj VkbZi lsfVax % टेसा मीडिया एण्ड कम्प्यूटर, C-206, A.F.Enclave-II, नई दिल्ली

eqnzd %

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

ikB~;Øe ifjp;

एम.ए. द्वितीय वर्ष के विद्यार्थी के रूप में अब आप 16 क्रेडिट का 4 पाठ्यक्रमों का कहानी संबंधित माड्यूलर पढ़ रहे हैं। 'भारतीय कहानी' (एम.एच.डी.–12) इन चारों पाठ्यक्रमों में चौथा पाठ्यक्रम है। यह पाठ्यक्रम 4 खंडों और 15 इकाइयों में विभाजित है। इस माड्यूलर का प्रत्येक पाठ्यक्रम 4 क्रेडिट का है।

यह पाठ्यक्रम भारतीय कहानियों पर केंद्रित है। इस पाठ्यक्रम का उद्देश्य भारतीय कहानी के सामर्थ्य से परिचित कराना है। एम.एच.डी.–10 में आप प्रेमचंद की कहानियों का और एच.एच.डी.–11 में हिन्दी कहानियों का विशेष अध्ययन कर चुके हैं। इसके अतिरिक्त एम.एच.डी.–03 में भी आपने कुछ प्रमुख कहानीकारों की कहानियों का अध्ययन किया है। इस पाठ्यक्रम में भारतीय भाषाओं के पन्द्रह महत्त्वपूर्ण कहानीकारों की कहानियों का अध्ययन करना है। यह पाठ्यक्रम हिन्दी के विद्यार्थियों का भारतीय कहानी से विधिवत परिचय कराता है।

इस पाठ्यक्रम में चयनित कहानियों का विस्तृत विश्लेषण दिया गया है। इस विश्लेषण से विद्यार्थियों की आलोचनात्मक क्षमता का विकास होगा। वे इन कहानियों के विश्लेषण से यह सीख सकेंगे कि कहानी को किस प्रकार पढ़ा और विश्लेषित किया जाता है। कहानियों के विश्लेषण के क्रम में इस बात का ध्यान रखा गया है कि उनमें उन प्रवृत्तियों की चर्चा भी अवश्य हो जो संबंधित लेखक के रचनाकर्म को परिभाषित करती हों। इस पाठ्यक्रम में इस बात का भी ध्यान रखा गया है कि विद्यार्थियों को भारतीय भाषाओं में लिखी जा रही कहानियों का एक संतुलित परिचय मिल सके। इस पाठ्यक्रम का विस्तृत विवरण इस प्रकार है–

[k.M 1 ey;kye] dUuM] rfey vkSj rsyxq Hkk"kk dh dgkfu;k¡

इकाई 1 'दीदी': विश्लेषण और मूल्यांकन

इकाई 2 लड़की जिसकी मैंने हत्या की : विश्लेषण और मूल्यांकन

इकाई 3 ट्रेडिल : विश्लेषण और मूल्यांकन

इकाई 4 प्राणधारा : विश्लेषण और मूल्यांकन

[k.M 2 ckXyk] vle h vkSj vksfM+;k Hkk"kk dh dgkfu;k¡

इकाई 5 अपने लिए शोकगीत : विश्लेषण और मूल्यांकन

इकाई 6 एक अविस्मरणीय यात्रा : विश्लेषण और मूल्यांकन

इकाई 7 बघेई : विश्लेषण और मूल्यांकन

[k.M 3 ejkBh] dksd.kh] xqtjkrh vkSj jktLFkkuh Hkk"kk dh dgkfu;k¡

इकाई 8 ''विद्रोह'' : विश्लेषण और मूल्यांकन

इकाई 9 ओऽरे चुरुंगन मेरे.... : विश्लेषण और मूल्यांकन

इकाई 10 चिता : विश्लेषण और मूल्यांकन

इकाई 11 ''दूजौ कबीर'' : विश्लेषण और मूल्यांकन

[k.M 4 mnwZ] iatkch] d'ehjh vkSj eSfFkyh Hkk"kk dh dgkfu;k¡

इकाई 12 'टोबा टेक सिंह': विश्लेषण और मूल्यांकन

इकाई 13 अपना-अपना कर्ज़: विश्लेषण और मूल्यांकन

इकाई 14 'जवाबी कार्ड' : विश्लेषण और मूल्यांकन

इकाई 15 पाँच–पत्र : विश्लेषण और मूल्यांकन

हम चाहते हैं, हमारे विद्यार्थी भारतीय कहानी के पूरे परिदृश्य से परिचित हों। इस पाठ्यक्रम को तैयार करने का उद्देश्य भी यही है। हमें उम्मीद है, इन इकाइयों के अध्ययन के पश्चात् आप भारतीय कहानी के विस्तृत फलक से परिचित हो सकेंगे/सकेंगी।

शुभकामनाओं सहित।

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

[k.M 1 ifjp;

यह कहानी संबंधी माड्यूल के चौथे पाठ्यक्रम 'भारतीय कहानी' का पहला खण्ड है। इस खण्ड में कुल चार इकाइयाँ हैं जो इस प्रकार हैं–

bdkbZ 1 'दीदी': विश्लेषण और मूल्यांकन

bdkbZ 2 लड़की जिसकी मैंने हत्या की : विश्लेषण और मूल्यांकन

bdkbZ 3 ट्रेडिल : विश्लेषण और मूल्यांकन

bdkbZ 4 प्राणधारा : विश्लेषण और मूल्यांकन

इस खण्ड में दीदी (मलयालम), लड़की जिसकी मैंने हत्या की (कन्नड़), ट्रेडिल (तमिल), प्राणधारा (तेलुगु), जैसी, अत्यंत महत्त्वपूर्ण कहानियों का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। इस खण्ड को पढ़ने के पश्चात् आप एम.टी. वासुदेव नायर, आनन्द, डी. जयकान्तन, कालीपट्नम रामाराव जैसे महत्त्वपूर्ण भारतीय कहानीकारों की कहानीकला से भी परिचित होंगे/होंगी। इन इकाइयों में भारतीय कहानी की प्रवृत्तियों पर भी विचार किया गया है।

हमें विश्वास है, इस खण्ड के अध्ययन के पश्चात् मलयालम, तमिल, कन्नड़ और तेलुगु भाषा की कहानियों की कुछ प्रवृत्तियों को ठीक ढंग से समझ सकेंगे/सकेंगी। साथ ही इस खण्ड में शामिल चार कहानीकारों के रचना संसार का भी संक्षिप्त परिचय आपको मिल सकेगा। इन कहानियों के विश्लेषण से गुजरते हुए आप देखेंगे/देखींगी कि किसी कहानी की श्रेष्ठता के निर्धारण में उसकी कथावस्तु के साथ-साथ उसके रूप पक्ष का भी बड़ा योगदान होता है। इस पाठ्यक्रम के दूसरे खण्ड में भी आप तीन कहानियों का अध्ययन करेंगी/करेंगे।

शुभकामनाओं सहित।

bdkbl 1 ^nhnh*% fo'y"k.k vkj eY;kdu

bdkbl dh :ijs[kk

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 लेखक का परिचय

1.3 मलयालम कहानी का विकास : एम.टी. वासुदेवन नायर की भूमिका

1.4 सृजन एवं कहानी संबंधी एम.टी. के विचार

1.5 'दीदी' कहानी का कथानक

1.6 दीदी कहानी के विभिन्न आयाम

   1.6.1 नैतिक मान्यताओं व मूल्यों की शिकार स्त्री की त्रासदी

   1.6.2 बच्चे की निरीहता का उन्मूलन

   1.6.3 कहानी में अभिव्यक्त मनोवैज्ञानिक आयाम

   1.6.4 कहानी में उजागरित केरल की पारिवारिक ज़िंदगी और समाज का स्वरूप

1.7 भाषा-शैली

1.8 सारांश

1.9 अभ्यास

1-0 mís';

एम.ए. हिन्दी के द्वितीय वर्ष के कहानी से संबन्धित पाठ्यक्रम 'भारतीय कहानी' के खंड 1 के तहत आती इकाई 1 आपके सामने है। इसमें आप मलयालम के प्रतिष्ठित कहानीकार एम.टी वासुदेवन नायर की शुरुआती महत्वपूर्ण कहानी 'दीदी' (ओपोळ) का विश्लेषण व मूल्यांकन सम्मिलित है। इस अध्ययन के बाद आपः

- एम.टी. वासुदेवन नायर के व्यक्तित्व, सर्जनात्मकता और कहानी संबन्धी मान्यताओं का परिचय प्राप्त कर सकेंगे/सकेंगी।
- मलयालम कहानी के विकास और उसमें एम.टी. के अवदान की जानकारी मिल जाएगी।
- 'दीदी' कहानी के ज़रिए केरल की एक ज़माने की सामाजिक ज़िन्दगी और समाज में बरकरार मूल्यबोध का भी परिचय मिल जाएगा।
- समाज की नैतिक धारणाओं व मान्यताओं की शिकार बनती स्त्री की विवशता व त्रासदी की पहचान हो जाएगी।
- बच्चों की निरीहता के साथ सामाजिक नैतिकता के शिकार बनते उनकी असहाय हालत से भी वाकिफ हो जाएंगे/जाएंगी।
- कहानी में दर्ज पात्रों के ज़रिए मनोवैज्ञानिक आयामों का भी परिचय मिल जाएगा।

1-1 iLrkouk

भारत की अन्य भाषाओं की तुलना में 'मलयालम' बोलने वालों की संख्या कम है। कमोबेश साढ़े तीन करोड़। मलयालम भाषा का इतिहास भी लंबा नहीं है। लेकिन यह भाषा जीवंत एवं गत्यात्मक है। केरल में साक्षरता का स्तर शिखर पर होने के कारण साहित्य की संरचना और आस्वादन की क्षमता भी सशक्त है।

मलयालम साहित्य की दीप्त विधा है कहानी। इसका तेजस्व एवं दीप्तिमान रचनाकार हैं एम. टी. वासुदेवन नायर जो 'एम.टी' नाम से मशहूर हैं। मलयालम कहानी के विकास के तीसरे दौर के प्रतिनिधि रचनाकार हैं एम.टी। उनकी पूर्व पीढ़ी तकषी शिवशंकर पिल्लै की थी जो मार्क्सवादी दर्शन से प्रभावित थी। यथार्थवाद के ठोस धरातल पर उनकी रचनाएँ गठित थी। वे पक्षधर थे। उनके दिलो–दिमाग में गरीब, शोषित एवं मेहनती वर्ग के प्रति रहम था। वे वर्ग समाज को बदलना चाहते थे, इसके लिए उन्होंने अपनी सर्जनात्मकता को माध्यम बनाया। इसलिए ही तकषी ने भंगी और मछुआरों की ज़िंदगी को सर्जनात्मक आयाम दिया। पूर्व पीढ़ी और अपनी पीढ़ी के सर्जनात्मक अंतर को जाहिर करते हुए खुद एम.टी. ने लिखा है – ''पहले की कहानियों में इन्सान का पेट ही दर्शित था। वही बोलता था। अब दिल ज़्यादा बोलता है''। (कहानीकार की शिल्पशाला) एम.टी. की पीढ़ी ने व्यक्ति की आंतरिक दुनिया को खोल दिया। व्यक्ति–मन की गहराइयों में पैठकर, वहाँ के ख्यालों को एडिटिंग के बिना रचनाओं में जाहिर किया। यह दरअसल पूर्व साहित्यिक परिवेश के प्रति प्रतिक्रिया हो था। एम.टी. की पूर्व पीढ़ी के तकषी, बशीर, पोट्टक्काट जैसे सभी रचनाकारों ने व्यक्ति से विमुख होकर सामाजिक एवं आर्थिक परिप्रेक्ष्य में समस्याओं के मूल्यांकन करने एवं हल की कोशिश की थी।

जैसे यह सर्वविदित बात है कि स्वतंत्रता के बाद जैसा परिवर्तन लोग चाहते थे, वैसा भारत में कहीं भी संभव नहीं हुआ। केरल में वामपंथी सरकार सत्ता में आई थी, लेकिन जल्दी ही केन्द्र सरकार ने सरकार को डिसमिस कर दिया। वामपंथी आंदोलन और भूमि सुधार से अवश्य आम जनता की हालत में बदलाव आया था, लेकिन मध्यवर्ग निराशा एवं व्यर्थताबोध की गिरफ्त में पड़ा था। वामपंथी विचारधारा और वामपंथी सरकार के सुधारात्मक कदमों से सामंतशाही मातृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था का विघटन हो रहा था। इस सामाजिक परिवेश में जीवित व्यक्ति और चरित्र को समझने में प्रगतिवादी रचनाकार नाकाबिल थे। मेहनती व मज़दूर वर्ग की तरह ये भी अभावों से पीड़ित थे। इनके भी अपने दुःख–दर्द थे। लेकिन फ्यूडल मूल्यबोध से संचालित इनका मन वामपंथी विचारधारा को अपनाने और क्रांतिकारी खेमे में खड़े होने के लिए तैयार नहीं था। एम.टी. का कथा साहित्य इसी मध्यवर्ग की निराशा, व्यर्थता व प्रतिरोध पर केन्द्रित है। दरअसल यथार्थवाद का मतलब वर्गों में बटे समाज की विड़ंबनाएँ, सर्वहारा वर्ग की समस्याएँ व वर्ग संघर्ष का चित्रण ही नहीं है। समाज में ऐसे लोग और व्यक्ति भी हैं जो इन सबसे बेखबर रहने के लिए मज़बूर हैं। उनकी ज़िंदगी, रिश्ते, मुश्किलों व तकलीफें भी तथाकथित यथार्थवाद के तहत आती भी हैं। सचमुच इनका चित्रण यथार्थवादी साहित्य का और एक आयाम ही है। मशहूर आलोचक एम.एन. कारश्शेरी के साथ बात करते हुए खुद एम.टी. ने अपनी पीढ़ी के योगदान पर काफी बारीकी से बताया भी है – ''हमारी पूर्व-पीढ़ी ने प्रमुख रूप से सामाजिक समस्याओं पर बात की थी। तकषी, बशीर, पोनकुन्नम वर्की की रचनाएँ इन्हीं पर केन्द्रित थी। खेती की ज़मीन; किसानों के लिए जैसे नारे, अमीर-गरीब की समस्याएँ आदि आपको याद होंगे। लेकिन हमारी पीढ़ी तो मानवय समस्याओं पर केन्द्रित रही।'' यों यह बात स्पष्ट जाहिर है कि एम.टी. की सर्जनात्मकता ने पूर्व पीढ़ी से अलग रास्ता आत्मसात् करते हुए सर्जनात्मक क्षेत्र पर अपनी

गहरी छाप दर्ज की है। यह दरअसल एक अधूरे काम को पूरा करने का सफल प्रयास भी कह सकते हैं। सामाजिक प्रतिबद्धता, दायित्वबोध व यथार्थवाद की अभिव्यक्ति का दाव करने वाले प्रगतिशील साहित्यकारों ने जिस वर्ग की उपेक्षा की थी, उनको सर्जना के क्षेत्र में लाने की जद्दोजहद ही एम.टी. ने की है जो बिलकुल कम महत्वपूर्ण बात नहीं है। इसलिए एम.टी. की सर्जनात्मकता का सामान्य परिचय और उनकी कहानी का अध्ययन 'भारतीय कहानी साहित्य' के संदर्भ में बिलकुल उपादेए एवं लाजिमी है।

1-2 y[kd dk ifjp;

नौ अगस्त 1933 को केरल के पोन्नानी तालुक के कूटल्लूर नामक गाँव में एम.टी. की पैदाइश हुई थी। उनकी माँ अम्मालु अम्मा थी और पिताजी का नाम था टी. नारायणन नायर। चार भाइयों में एकदम छोटा वसु बहुत ही ज़िद्दी स्वभाव का था। बताया जाता है कि उनकी माँ ने इस स्वभाव से निजात पाने के लिए मंदिर में मनौती की थी। लेकिन जब वसु स्कूल जाने लगे तो यह आदत वरदान सिद्ध हो गई। अच्छी तरह पढ़ना और अव्वल आना ही उनका लक्ष्य रहा था। सन् 1942 में कुमरनल्लूर स्कूल से एम.टी. ने चौदह वर्ष की उम्र में दसवां दर्जा पास किया। कॉलेज में दाखिल होने के लिए सोलह बरस पूरा करना था। इसलिए दो बरस घरघुस्सू रहना पड़ा। लेकिन उनमें अंतर्निहित रचनाकार के रूपायन में ये दो वर्ष सार्थक रहे।

एम.टी. के पिताजी श्रीलंका में एक भारतीय कारोबार कंपनी के प्रबन्धक थे। माँ भी उधर ही रहती थी। लेकिन जब बच्चे बड़े हो गए तो वह केरल वापस आ गई। बच्चों को मलयालम भाषा और केरलीय संस्कृति के माहौल में परवरिश करना चाहती थी। पिताजी तो नहीं ठहरे। अपने छोटे बेटे के प्रति माँ के दिल में विशेष वात्सल्य था। जब एम.टी पालक्काड़ विक्टोरिया कॉलेज में पढ़ रहा था, माँ बुरी तरह बीमार पड़ी। जब उन्हें उपचार के वास्ते मद्रास (चेन्नै) ले जाया जा रहा था, वसु माँ से मिलने पालक्काड़ रेलवे स्टेशन गए। सबसे माँ खुशी से विदा ले रही थी, लेकिन वसु को देखते ही सिसक पड़ी। वसु को पता नहीं था कि यह आखिरी विदाई है। जब माँ की मृत्यु हुई तो वसु इम्तिहान दे रहे थे। दो दिन बाद ही उन्हें खबर दी गई थी।

सन् 1953 में एम.टी. ने बी.एस.सी. पास कर ली। तुरंत उन्हें पालक्काड़ के प्रतिष्ठित एम. बी. ट्यूटोरियल (Tutorial) कॉलेज में अध्यापक की नौकरी मिली। उस कॉलेज के मालिक 'मलयाली' नामक मासिक पत्रिका प्रकाशित करते थे। एम.टी. उसमें निरंतर लिखने लगे। उनका उपन्यास 'आधी रात व दिन का प्रकाश' उपन्यास इसी पत्रिका में प्रकाशित हुआ था। कॉलेज में काम करते, जिला बोर्ड़ स्कूल में लीव वेकन्सी में अध्यापक पद भी संभाले। फिर ब्लॉक विकास कार्यालय में ग्रामसेवक के पद पर नियुक्ति मिली। लेकिन उच्च अधिकारी से निभा न सके तो दो दिन के भीतर ही इस्तीफा दे दिया। सन् 1956 में मलयालम के प्रतिष्ठित साप्ताहिक 'मातृभूमि' में सह संपादक के पद पर नियुक्ति मिली। 1968 में संपादक बन गए। 1981 में, सेवानिवृत्ति के बाद साहित्य सृजन में संलग्न रहे थे कि 1988 में 'मातृभूमि' के सभी प्रकाशनों के संयुक्त संपादक के प्रतिष्ठित पद पर उनकी नियुक्ति हो गई।

फिल्म वित्तीय निगम, फिल्म सेन्सर बार्ड़, फिल्म इंस्टिट्यूट, केरल साहित्य अकादमी (अध्यक्ष), केन्द्र साहित्य अकादमी (सदस्य) आदि संस्थाओं से उनका संबन्ध रहा है। फिलहाल वे केरल तुंचन स्मारक समिति के अध्यक्ष हैं।

एम.टी. की प्रिय विधा कहानी है। उनके अब तक सोलह कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। सन् 1948 में मद्रास से प्रकाशित पत्रिका चित्रकेरल में उनकी पहली कहानी 'विषुकैनीट्टम' (विष्णु उत्सव के समय दिया जानेवाला पैसा) प्रकाशित हुई। विश्व कहानी प्रतियोगिता में उनकी कहानी 'पालतू जानवर' पुरस्कृत होने के बाद वे कहानीकार के रूप में मशहूर हो गए। सरकस के तंबुओं में अपनी ज़िंदगी कुरबान करते कलाकारों की त्रासद कहानी ही उन्होंने उसमें चित्रित की थी। 'अंधेरी की आत्मा' व 'कुट्टि दीदी' के प्रकाशन के बाद मलयालम के प्रथम श्रेणी के कथाकारों में उन्हें स्थान प्राप्त हो गया।

उनका पहला उपन्यास 'आधी रात और दिन का प्रकाश' 1953 में लिखा गया था। लेकिन उसका प्रकाशन विलम्ब से हुआ। प्रसिद्ध कहानीकार एन.पी. मुहम्मद से मिलकर उन्होंने अरब सोना उपन्यास की रचना की। उन्होंने अपने प्रिय कहानीकार हेमिंगवे पर हेमिंगवे के अध्ययन' नामक किताब लिखी है। 'मानव-परछाई' व 'भीड़ में' अकेला उनके यात्रावृत्तान्त हैं। दुनिया के विभिन्न प्रदेशों के सफर के दौरान हासिल अपूर्व अनुभवों को उन्होंने इसमें लिपिबद्ध किया है। 'गोपुर द्वार में' उनका ख्यातिप्राप्त नाटक है। 'पारसमणी' और 'दया नामक लड़की' उनकी बालसाहित्य कृतियां हैं। उनकी पटकथाएँ भी प्रकाशित हैं। कुल मिलाकर इस बहुआयामी प्रतिभावान के चालीस रचनाएँ अब तक प्रकाशित हो चुकी हैं।

एम.टी. के उपन्यास 'नालुकेट्टु' का हिन्दी में दो अनुवाद प्राप्त हैं। कृष्णमेनोन 'हवेली' और पद्मिनी मेनोन 'चार दीवारों से' नाम से उसका अनुवाद किया है। 'मञ्ञु' का 'तुषार नाम से हफसत सिद्दिकी ने 'काल' का उसी नाम से एन.पी. कुट्टन पिल्लै, 'असुरवित्तु' उपन्यास डॉ. राधामणी ने 'शैतान का औलाद' और डॉ. के.एस. मणी ने 'रण्टामूषईम' का 'दूसरी बारी' नाम से अनुवाद किया है। व.डी. कृष्णन नंपियार की तरफ से 'अंधेरे की आत्मा और वानप्रस्थ' नाम से दो अनूदित कहानी संग्रह भी निकले हैं।

सन् 1953 में 'न्यूयोर्क हेराल्ड', दि हिन्दुस्तान टाइम्स, तथा मातृभूमि के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित अंतरराष्ट्रीय कहानी प्रतियोगिता में उनकी 'पालतू जानवर' कहानी पुरस्कृत हुई। यही एम.टी. को प्राप्त पहला पुरस्कार है। फिर केरल साहित्य अकादमी की तरफ से 'हवेली' पुरस्कृत हुई। उस वक्त वह सिर्फ चौबीस वर्ष का था। फिर अकादमी की तरफ से कहानी संग्रह और फिर 1982 उनका नाटक 'गोपुर द्वार में' पुरस्कृत हुए।

सन् 1970 को उपन्यास कालं के लिए उन्हें केन्द्र साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला। उनके 'दूसरी बारी' उपन्यास को केरल के मशहूर व्यलार अवार्ड प्राप्त हुआ। केरल के मुट्टत्तु वर्क अवार्ड से भी वे सम्मानित हैं। आखिर सन् 1995 के ज्ञानपीठ पुरस्कार से वे विभूषित हो गए।

फिल्म निर्देशक एवं पटकथा लेखक के रूप में भी एम.टी. की महान हैसियत है। सन् 1963 में फिल्म क्षेत्र में उनका प्रवेश हुआ। उनकी पहली पटकथा मुरप्पेण्णु (ममिया बहिन) ट्रेण्ड सेटर साबित हुई जिसमें सौन्दर्य, कला व व्यापार का संतुलित सामंजस्य हुआ था, सन् 1973 में अपनी कहानी पर आधारित फिल्म 'निर्माल्यम' (अर्पण) के लिए उन्हें राष्ट्रपति से स्वर्ण पदक मिला। फिल्म का निर्देशन भी उन्होंने ही किया था पटकथा लेखन के लिए वे चार बार राष्ट्रीय स्तर पर पुरस्कृत हो चुके है ज़्यादातर पटकथाएँ उन्होंने अपनी रचनाओं पर ही तैयार की है। उनमें प्रमुख है अंधेरी की आत्मा, दीदी, सुकृतम, उत्तर केरल की वरगाथा। वैशाली, पेरुन्तच्चन (महा-बढ़ई), ताष्वार (घाटी) पंचाग्नि, सदयम (दया के साथ) परिणय (शादी) आदि फिल्मों के लिए उन्होंने पटकथा तैयार की है। भूतपूर्व ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता एस.के. पोट्टक्काट की कहानी पर 'कटवॅ' नामक फिल्म बनाई जो अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पुरस्कृत हुई। अपने उपन्यास 'मञ्ञु' (तुषार) पर भी उन्होंने फिल्म बनाई है। जैसे

उपर्युक्त बताया गया उनकी ज़्यादातर पटकथाएँ प्रकाशित भी हो चुकी हैं। ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता तकषी पर उन्होंने एक वृत्तचित्र भी तैयार किया है। एम.टी. वासुदेवन नायर की कहानी संग्रह की सूची इस प्रकार है–

खून से सनी मिट्टी (1952), धूप और चांदनी (1954), दर्द के फूल (1955), तेरी याद में (1956), अंधेरे के आत्मा (1957), तरंग और तीर (1957), कुट्टि दीदी (1956), खोए हुए दिन (1960), बंघन (1963), पतन (1966), कङि वटु (खिलौना घर) (1966), वरिक्कुषिई (हाथी–बंध) (1967), एम.टी. की चुनिंदा कहानियाँ (1968), दर एस. सलाम (1972), अज्ञात का अनबना स्मारक (1978), फिर अभय की तलाश में (1978), स्वर्ग खुलने का वक्त (1980), वनप्रस्थ (1982)।

1-3 ey;kye dgkuh dk fodkl % ,e-Vh- okl|nou uk;j dh Hkfedk

मलयालम कहानी विधा की शुरुआत उन्नीसवीं सदी के अंतिम दशकों में हुई थी। उस ज़माने में पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन होने लगा था। पाठकों और लेखकों को पश्चिमी साहित्य से परिचित होने का अवसर भी मिला था। बताया जाता है दोनों के समन्वित माहौल ने मलयालम कहानी के सृजन के लिए नींव डाली थी। फिर भी प्रारंभिक कहानियों का कहानी की संकल्पना से सुदूर नाता ही नज़र आता है। पश्चिमी कहानियों का प्रभाव भी नहीं के बराबर है। लेकिन बाद के विकास क्रम में कथ्य और रूप के क्षेत्र में पश्चिम का प्रभाव स्पष्टतः जाहिर है।

मलयालम की पहली कहानी कौन सी है, इस बात पर विद्वानों के बीच मतभेद है। केरलवर्मा 'वलिय कोयितंपुरान' (1845–1914) ने 1869 में 'विज्ञानमंजरी' नामक किताब प्रकाशित की थी। इसमें संकलित 'दो भिखारी चुक्कों की कहानी' मलयालम की पहली कहानी साबित करने की कोशिश हुई है। के. माधवन ने प्रारंभकालीन 28 कहानियों का संकलन प्रकाशित किया था, उनके विचार में मलयालम की पहली कहानी 'वासनाकृति' है। लेकिन इसके रचनाकार के संबन्ध में मतभेद है। मशहूर आलोचक डॉ. एम.एम. बशीर का अंदाजा है कि इसका लेखक सी.पी. अच्चुत मेनोन (1862–1937) हो सकता है। प्रारंभकालीन अन्य कहानीकारों में प्रमुख हैं मूरक्कोत्तु कुञ्ञप्पा और कुञ्ञिराम मेनोन।

बीसवीं सदी के तीसरे दशक में प्रतिष्ठित कहानीकार ई.व. कृष्णपिल्लै की पत्नी महेश्वरी अम्मा के प्रकाशनाधीन कुन्नंकुलम से 'कथाकौमुदी' नामक पत्रिका का प्रकाशन होने लगा। यह सिर्फ कहानी पत्रिका थी। ई.व. ने ही पत्रिका का पूरा दायित्व संभाला था। उन्होंने खुद कहानियां लिखी और दोस्तों को लिखने की प्रेरणा भी दी। ई.व. ने ज़्यादातर हास्य व्यंग्य कहानियाँ ही लिखी थी। 'केलीसौधम' नामक कहानी संग्रह (1929) में प्रकाशित सभी कहानियाँ पहले इस पत्रिका में प्रकाशित हो गई थी। ई.व. ने कहानी के परिप्रेक्ष्य एवं पात्र सृजन में वस्तुनिष्ठ नज़रिए को आत्मसात करते हुए कहानी कहने की एक सपाट रीति को अपनाया था। उन्होंने सामाजिक अनुभवों को कथ्य में पिरोया। उन्होंने यह साबित किया कि गंभीर विषयों की अभिव्यक्ति के लिए कहानी सक्षम विधा है। के. सुकुमारन भी इस ज़माने के कहानीकार हैं। उन्होंने संवाद को ज़्यादा अहमियत दी थी। इसलिए मशहूर आलोचक एम.पी. पॉल ने इनकी कहानियों को एक अलग नाम 'प्रहसन' दिया है।

योंमलयालम कहानी का पहला दौर चालीस बरस का है। इस दौर की कहानी गंभीर तौर पर नहीं रची गई है। कतिपय कहानियों में ज़रूर सुदृढ़ कथ्य, बारीकी चरित्र चित्रण एवं

यथार्थ परिवेश का वर्णन है लेकिन ज़्यादातर कहानियाँ मनोरंजन के वास्ते लिखी गई थी। कतिपय कहानियों में सहज एवं जीवंत संवदों का नियोजन हुआ है।

कहानियों में संयुक्त एवं मातृसत्तात्मक पारिवारिक व्यवस्था का चित्रण तो है, लेकिन उससे जुड़ी समस्याएँ नदारद हैं। ये कहानियाँ प्रेम, प्रतिशोध एवं धन की हविश के नीवाधर पर रचित हैं। यानी कहानियों का मुख्य कथ्य इनसे जुड़ा हुआ है। फिर भी प्रेम को अतिरिक्त वरीयता दी गयी है। नायक के धीरोदात्त क्रियाओं से हुलसित एवं आकृष्ट प्रेमिका इन कहानियों का अनिवार्य चरित्र रही थी। अपने मामा की बुरी हरकतों के खिलाफ प्रतिशोध करने के लिए कटिबद्ध भाजां पर भी कहानियाँ लिखी गई थी।

जैसे शुरुआत में सूचित किया गया है कि पश्चिमी साहित्य से अवगत होते हुए भी, उसका प्रभाव इस ज़माने की कहानियों में दिखाई नहीं दे रहा है। कहानियों का अनुवाद भी नहीं हुआ है। ऐसा बताया जाता है कि 1890 का दशक अंग्रेज़ी कहानी का स्वर्णकाल था। ताज्जुब की बात है कि 1891 में ही मलयालम में कहानी कहने योग्य कहानी की रचना हुई थी।

यह भी गौरतलब बात है कि बीसवीं शताब्दी की शुरुआत में भारतीय और विदेशी भाषाओं से मलयालम में कहानियाँ अनूदित होने लगी। उन्नीसवीं शताब्दी में सृजनरत अनेकों ने अपनी सर्जनात्मक वृत्ति ज़ारी रखी। दो तीन कहानियाँ लिखकर कहानी क्षेत्र से विदाई लेनेवाले लेखक भी रहे थे। जो भी हो 1891 से 1930 तक जैसे की उपर्युक्त सूचित किया गया है कमोबेश 40 वर्ष मलयालम कहानी का बचपन रहा था।

मलयालम कहानी का दूसरा दौर सन् 1930 से 1955 तक माना जाता है। यह ज़माना एक हद तक कहानी का स्वर्णकाल रहा है। इस दौर में केरल के सामाजिक, सांस्कृतिक व साहित्यिक क्षेत्र में नीवाधार परिवर्तन आ गए थे। दलितों का उत्थान, वामपंथी विचारधारा का प्रचार प्रसार, शिक्षा के प्रति सभी समुदायों में जाहिर रुचि, पत्र-पत्रिकाओं की भरमार, संयुक्त परिवार का अणु परिवार में तब्दीली, व्यक्ति के दिलों दिमाग में अपने व्यक्तित्व व अस्मिता को उभारने की अभीप्सा सत्ताधारियों की तरफ उंगली उठाने की व्यक्ति और संगठनों की काबिलियत आदि अनेक तत्व ने उस ज़माने के सर्जनकारों को गहराई से प्रभावित किया था।

यथार्थवादी कहानी की संरचना इसी युग में शुरू हो गई थी। कहानी के कथ्य एवं शिल्प में नीवाधार परिवर्तन आ गए। भावना के आधार पर कहानी गठने की रीति छोड़कर ज़िंदगी की असलियतों पर कहानी लिखी जाने लगी। मनोरंजन के अलावा विशेष मकसद पर कहानी का सृजन होने लगा। प्रतिष्ठित आलोचक एम.पी. पॉल की तर्ज पर कहें तो कहानी ज़िंदगी की किताब से काड़ लिये गए पन्ने जैसे हो गई। जिनके पैरों पर खूब नज़र आने लगा। व्यक्ति एवं सामाजिक जीवन के हकीकतों को उन्मीलित करने के साथ आलोचना करने व चुनौति देने के लिए भी सृजनकार तैयार हो गए। कहानीकारों ने परंपरागत अंदाज को छोड़कर वैज्ञानिक एवं वस्तुनिष्ठ नज़रिए से माननीय संबन्धों का चित्रण किया था। दरअसल यही इस युग की यथार्थवादी कहानी का नियामक तथ्य भी रहा था।

गौरतलब बात यह है कि सन् 1936 में भारतीय प्रगतिशील साहित्य संघ की स्थापना हुई थी। इसी साल केरल में 'जीवल साहित्य संगठन' का रूपायन हुआ जो अगले साल 'प्रगतिशील साहित्य संगठन' के रूप में तब्दील हो गया। संगठन का घोषित लक्ष्य यही रहा कि किसी भी हालत में कला अल्पसंख्यकों के मनोरंजन का साधन नहीं रहनी चाहिए। कला कला के लिए नहीं बल्कि जीवन के लिए होनी चाहिए। साहित्य का सृजन समाज की प्रगति को लक्ष्य करके सोद्देश्य होना चाहिए। प्रगतिशील साहित्य संगठन का यही संदेश था कि साहित्यकार का नज़रिया सार्वलौकिक रहे। मानव की समता पर आधारित एवं अनाचार एवं

अत्याचारों से मुक्त एक नये समाज की संरचना में साहित्यकार अपनी भूमिका निभाए। साहित्य को इसके लिए एक कारगर ज़रिए के रूप में इस्तेमाल करे। लेकिन इस मकसद के लिए कौन सी राह अपनानी है साहित्य के कथ्य और रूप में किसको वरीयता देनी है, इन बातों पर मतभेद की वजह संगठन में शिथिलता आ गई। जो भी हो इस युग में साहित्य के ज़रिए मेहनत और मेहनत वर्ग के ऐतिहासिक महत्व का बयान किया गया। मानवीय ज़िंदगी की त्रासदी के पीछे की राजनैतिक एवं न्यायिक कारणों की जांच पड़ताल हुई। यह हकीकत साबित करने की कोशिश भी हुई कि व्यक्ति की मानसिक दुनिया का बाहरी यथार्थ की दुनिया के साथ द्वन्द्वात्मक सरोकार कायम है।

इस दौर प्रमुख कहानीकार हैं– तकषी, केशवदेव, पोनकुन्नं वर्की, कारूर, बशीर और पोट्टक्काट। इनकी सर्जनात्मक की वजह मलयालम कहानी में अभूतपूर्व सजगता आ गई थी। समकालीन यथार्थ ज़िंदगी की अभिव्यक्ति के साथ, उसकी व्याख्या एवं आलोचना भी की गई थी। कहानी की अंतर्वस्तु एवं रूप में जैसे उपर्युक्त सूचित किया गया है क्रांतिकारी कदम उठाए गए थे।

मलयालम कहानी के तीसरे दौर की कहानी के संबन्ध में सामान्य तौर पर बताया जाता है कि इस ज़माने में व्यक्ति के अनुभवों को वरीयता दी गई थी। इस युग के सर्वोच्च कहानीकार एम.टी. है। सिर्फ उनकी ही नहीं टी. पद्मनाभन, माधविकुट्टी जैसे अन्य कहानीकारों की कहानियों में भी 'भावगीत' के गुण समाहित हो गए थे। मन की गति, विचार व हालात की अभिव्यक्ति देते हुए कहानी अनुभूत्यात्मक हो गई थी। लेकिन यह साबित करना गलत होगा कि मन की अभिव्यक्ति कहानी की नीव 'कथातत्व को बलि देते हुए की गई थी। यही कहना सही होगा कि कथानक के साथ 'कथा-विन्यास' के लिए लिरिकल पद्धति या भावगीतात्मक शैली अपनाई गई थी। यह भी सही है कि इस दौर में अवश्य मन के अपूर्व भावों को जाहिर करती सूक्ष्म कहानियाँ भी लिखी गई थी। इस संदर्भ में यह खुलासा करना वाजिब लगता है कि मानसिक भाव कोई निरपेक्ष तथ्य नहीं है। दरअसल भौतिक जीवन या कार्यकलाप का समांतर रूप है– मन की गतिविधियाँ।

पूर्व पीढ़ी की कहानियों के पात्रों का इस दौर के पात्रों से तुलना करते हुए बता सकते हैं कि पहले कहानी के पात्रों की तुलना के संदर्भ में यह मूल्यांकन भी सही है कि इस दौर के पात्र वर्गेतर हैं। लेकिन उच्च एवं निम्न वर्ग के पात्रों के मन समान नहीं हैं। अर्थ का प्रभाव मन और सोच पर भी पड़ता है। यह बात भी निस्तर्क है कि अर्थ की उपलब्धि समस्याओं की समाप्ति नहीं है। माली और मालिक तथा कामवाली व घरवाली के दुःख दर्द में भी समानताएँ संभव हैं।

यह यथार्थ है कि इस दौर की कहानियाँ व्यक्तिन्मुख एवं व्यक्ति केन्द्रित रही थी, लेकिन हमें इस बात की गहरी समझ होनी चाहिए कि व्यक्ति समाज का विलोम शब्द नहीं है। समाज में गहराई से जड़ीभूत विचारधारा के खिलाफ यदि कोई व्यक्ति सोचता है तो सचमुच वह सोच, सिर्फ उसकी नहीं होती है। वह व्यक्ति दरअसल उस विचारधारा के खिलाफ उभर आई सामाजिक मांग का ही प्रतिनिधि है। इस दौर की कहानियों में उभर आए एकाकीपन व निरर्थकता बोध से पीड़ित मायूस व्यक्तित्व सामाजिक व्यक्तित्व का ही हिस्सा है। दरअसल व्यक्ति एक सामाजिक कर्तृत्व ही है।

व्यक्ति केन्द्रित होने का मतलब यह नहीं है कि इस दौर की कहानियों में विविधता का अभाव है। हर एक कहानीकार की अपनी अलग खासियत रही है और उसी के मुताबिक कहानियों में विभिन्नता भी आई है। इस ज़माने के प्रमुख कहानीकार हैं – कोविलन, एम.टी., टी. पद्मनाभन, सी.वी. श्रीरामन, राजलक्ष्मी, वी.के.एन, पी. वत्सला और वैशाखन।

1-4 l`tu ,oa dgkuh lEcU/kh ,e-Vh- dh ekU;rk,¡

कहानी लेखन संबन्धी एम.टी. की दो किताबें प्रकाशित हैं – कहानीकार की शिल्पशाला और कहानीकार की कला। इसमें कहानी रचना संबन्धी दिशा-निर्देश के साथ सृजन संबन्धी उनकी सुचिंतित विचार भी दर्ज हैं। कहानीकार की शिल्पशाला में अपनी सृजनात्मकता पर उन्होंने प्रकाश डाला है – ''मैं अपने लिए लिखता हूँ। लिखते वक्त मेरे सामने कोई नहीं होता। पत्रकार, प्रकाशक या पाठक कोई भी नहीं, यह सब तो मेरी कहानी के भौतिक परिवेश के हिस्से हैं। कहानी की आत्मा मुझमें अंतर्निहित है। मेरे दिल में ही फूटती उपजती और फूलती फलती है।''

सृजन के दौरान अनुभूत अभूतपूर्व आज़ादी के बारे में भी उन्होंने लिखा है – ''सृजन के दौरान में ऐसी स्वतंत्रता से गुज़रता हूँ जो ज़िंदगी के किसी भी पल में अनुभूत होती नहीं है। सृजन के दौरान में मालिक या बंदा नहीं हूँ। घर, दफ्तर, सड़क एवं समाज में मैं अस्वतंत्र, दुर्बल एवं गुलाम हूँ, लेकिन सृजन की दुनिया में राजा एवं प्रजा मैं खुद हूँ। असंतृप्त आत्मा को कभी कभार हासिल असुलभ पल एवं आज़ादी के लिए मैं लिखता हूँ। इसका यह मतलब नहीं कि सृजन एम.टी. के लिए 'हॉबी' है। उनकी सृजनात्मकता की विडंबना भी यही है। सृजन मुक्ति देता है; लेकिन वह तकलीफदेह भी है। उन्होंने लिखा है कि सृजन मेरे लिए कठिन कर्म है। एक कहानी लिख चुकने के बाद मैं मानसिक तौर पर बेहद थक जाता हूँ।

कुछ साल पहले यानी 2005 दिसंबर में एम.टी. ने कहानीकार वी. आर. सुधीष को इंटरव्यू दिया था। (मातृभूमि साप्ताहिक, दिसंबर, 4, 2005 अंक) अंतरंग बातचीत के दौरान उन्होंने कहा था कि कितने सालों से मैं लिख रहा हूँ। फिर भी लिखने के दौरान मैं नरवस (Nervous) हो जाता हूँ। संदेह होता है कि आगे भी यह काम मैं ज़ारी कर सकूँगा? यदि आगे बढ़ने का आसार नज़र आता है तो खुशी होती है। कतिपय पन्ने लिखने के बाद खुद सोचने लगता हूँ क्या यह ज़रूरी है? यह सवाल वाजिब भी है। दरअसल इसका सम्मान व पुरस्कारों से कोई ताल्लुकात नहीं है। प्रकाशन के बाद रचना के संबन्ध में शिकायतें हो सकती हैं? लेकिन रचना से जुड़ी बातों पर रचनाकार निर्णय लेता है। वही निर्णायक है। मैं चाहूँ तो कुछ भी लिखे बिना मैं रह सकता हूँ। जो कुछ लिखा है, उसे छोड़ या तिरस्कार भी कर सकता हूँ। इन बातों पर हमारा ही निर्णय अंतिम है, सचमुच यही हमारे लिए आज़ादी है।

एम.टी. की कहानी लिखने की रीति भी विशिष्ट है। अपने आप बोलने की उनकी आदत रही है। सृजन में भी यह आदत नज़र आती है। यानी आत्मोन्मुखता द्रष्टव्य है। कागज़ पर उतारने के पहले कहानी की सारी बातें अनुच्छेद एवं वाक्य तक मन में जमाकर रखते हैं। इसलिए अपनी कहानी के वाक्य रटने या मौखिक रूप में प्रस्तुत करने में कोई दिक्कत नहीं होती। एक तरह मन कार्यशाला बन जाता है। कहानी, मन में सहज चेतना से अपने आप पूरी नहीं होती है। सचेत ढंग से दखल देना पड़ता है। कभी कुछ जोड़ना पड़ेगा, कभी निकालने की ज़रूरत भी पड़ेगी। दरअसल कहानीकार की शिल्पशाला मन ही है। मानसिक कार्यकलाप भाषा के ज़रिए ही चलता है, इसलिए कार्यशाला को भाषा भी कह सकते हैं। रचना-प्रवृत्ति को स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा है कि कहानी रचना कोई आत्मविस्तृति की बात नहीं है। सामग्री इकट्ठा करने के बाद रचनाकार को अनुशासित रहना पड़ेगा। जो कहना है उसे कम से कम शब्दों में कहना ही बेहतर है। गैर ज़रूरी चीज़ों को कहानी से जबरदस्ती निकालना होगा। यही सचमुच कहानी रचना का अनुशासन है।

जैसे पहले ही सूचित किया गया है कि एम.टी. की सबसे प्रिय विधा कहानी है। शुरुआत में उन्होंने कविता लिखी थी, लेकिन बाद में पता चला उनकी प्रिय विधा कहानी ही है। उन्होंने बताया भी है कि कहानी के प्रति मेरे दिल में विशेष ममता है। कहानी की यह खासियत है कि कविता के समान वह भी पूर्णता तक पहुँच सकती है। या पूर्णता को लक्ष्य बनाते हुए हम इस विधा पर काम कर सकते हैं। उपन्यास के विस्तृत कैनवस में सब कुछ समाविष्ट करने की स्वतंत्रता हमें मिलती है। डेक्युमेन्टेशन (documentation) के लिए ऐसी बातें भी लिखनी पड़ती है जिनमें भंगिमा की ज़रूरत नहीं होती है। लेकिन कहानी में वाक्य ही नहीं गैर ज़रूरी शब्द तक लिखना वाजिब नहीं है। उपन्यास में अध्याय तक ज़्यादा हो जाय तो कोई हर्ज नहीं। उसके समग्र सौन्दर्य में कोई आंच नहीं पड़ेगी। लेकिन कहानी के संदर्भ में अतिरिक्त सतर्कता बरतनी पड़ती है।

कहानी के शिल्प संबन्धी उनका अभिमत है कि शिल्प कथ्य के अनुसार ही रूपायित होता है। वह अमुक समय के फैशन की तर्ज पर बनती चीज़ नहीं है। उन्होंने मिसाल प्रस्तुत करते हुए बताया है कि प्यार के अपूर्व रिश्ते को उजागर करती मेरी कहानी 'वनप्रस्थ' का अभिन्न हिस्सा है प्रकृति। लेकिन अमेरिकन ज़िंदगी पर आधारित 'षेरलक' कहानी में प्रकृति से जुड़े लफ्ज़ तक नहीं है। उनके शिल्प की और एक नीवाधार खासियत यह है कि पाठक को कहानी सुनने का एहसास नहीं होता है बल्कि कहानी, हमें भुगतने का एहसास करा देती है। सुनना और भोगना समान नहीं होते हैं।

1-5 ^nhnh* dgkuh dk dFkkud

एम.टी. वसुदेवन नायर की 'दीदी' कहानी 'अंधेरे की आत्मा' (हिन्दी अनुवाद) संग्रह में संकलित कहानी है। पूरी कहानी एक बच्चे के ख्यालों के ज़रिए प्रस्तुत की गई है। बच्चे का नाम है अप्पू जिसकी उम्र मुश्किल से पाँच, छः साल है। उसकी सोच के ज़रिए कहानी की घटनाओं का आकलन हुआ है, इसलिए भाषा एकदम सरल है और पात्रों के चित्रण में कोई जटिलता नहीं है। ज़्यादातर पात्रों का सरोकार अप्पू से है। अप्पू के मामा और शादी का दलाल शंकरनायर का सीधा संबन्ध अप्पू से नहीं है। फिर भी उनका चित्रण अप्पू के नज़रिए से ही हुआ है।

अप्पू की माँ मालू है जिसे वह दीदी पुकारता है। माँ की दीदी पुकारने की आदत उस पर डाली गई है। इसलिए कि अप्पू मालू की नाजायज संतान है। मालू की शादी के पहले अप्पू की पैदाइश हुई थी। किसी से उसका इश्क हो गया था और उसकी बरकत है – अप्पू। बहिन के बिगड़े चरित्र से रूठकर उसका भाई, घर में पैर न रखने का प्रण लेकर चला जाता है। पांच साल के बाद भी वह घर के फाटक तक ही आता है। बहिन के दोषी चरित्र का कसूरवर वह माँ को मानता है और उसे कोसते हुए कहता है – ''सब सीख तुम्हें बेटी को पहले से ही देनी चाहिए थी।'' माँ के गुज़रने के बाद घर के आसपास तक न आने की धमकी भी देता है।

दीदी के रोने के बयान से कहानी की शुरुआत होती है। अप्पू सोचता है शायद नानी ने गाली दी होगी। नानी उसे भी डाटती है, लेकिन अप्पू को रोना नहीं आता बल्कि गुस्सा आता है। वह सोचता है कि इतनी बड़ी होकर भी दीदी डांट फटकार क्यों सहती है? बच्चा होने की वजह वह नानी के फटकार का असली कारण समझ नहीं पाता।

नाजायज संतान होने की वजह नानी के दिल में अप्पू के प्रति उतनी ममता नहीं है। इसलिए ही वह बात-बात पर गाली देती रहती है। एक बार मालू माँ से शिकायत करती है कि कोस

कोस कर बच्चे को मार डालेगी। तब माँ बुरी तरह डांटती है। डांट सुनकर भी जब मालू अप्पू से उसके रिश्ते की याद दिलाती है। तब माँ उसके अनैतिक रिश्ते के अंजाम पर बल देते बरस पड़ती है – ''अरी....किसी.....ऐरे गैरे से.... हाय राम.... मुझसे ज़्यादा कहलवाना नहीं।

माँ बेटी के अनबन और झगड़े के कारण ही अप्पू माँ को चाहता तक नहीं है। उसे सिर्फ दीदी चाहिए। जब स्कूल के दोस्त अप्पू से कहता है कि उसकी दीदी, दरअसल उसकी माँ है तो, अप्पू को दोस्त की मूर्खता पर हंसी आती है। दोनों की बीच झगड़ा होता है। स्कूल से लौटते अप्पू सोचता है, दीदी कैसे माँ हो सकती है? उसे माँ बिलकुल नहीं चाहिए। माँ होती है तो क्या-क्या मुसीबतें झेलनी पड़ती हैं। दीदी की माँ है नानी। क्या नानी दीदी को चैन से बैठने देती है?

रात को दीदी से सटकर लेटते, नींद आने तक दीदी अप्पू को कहानियाँ सुनाती है। कहानी सुनना अप्पू को पसंद है। एक रात कहानी सुनाने के बदले दीदी चुपचाप पड़ी रहती है। थोड़ी देर बाद अप्पू से पूछती है कि बड़ा आदमी बनने पर दीदी का खूब खयाल रखेगा? अप्पू सिर्फ हामी भरता है। उसे लगा दो तीन दिनों से दीदी की तबीयत खराब है। वह चुपचाप अप्पू को नहलाती, खिलाती, व बाल संवारती है। यह सब करते उसके चेहरे की ओर ताकती भी रहती है। असली बात यह थी कि नानी दीदी की शादी की योजना बना रही थी। नानी दीदी से बना रही थी कि उसकी बात सोचकर तुम्हें मन मारने की ज़रूरत नहीं। वह अप्पू की ओर संकेत कर रही थी। ऊँची आवाज़ में समझा रही थी कि जो हो गया सो हो गया। इधर उधर की बातें सोचने से कोई फायदा नहीं। अगर यह भी हाथ से निकल गया तो ज़िंदगी भर पछताना पड़ेगा। शंकरन नायर नानी को भी समझा रहा था कि बच्चे की भनक तक उस आदमी के कान में न पड़े। अप्पू ने इन सबकी बातें सुनी थी। लेकिन उसे कुछ भी समझ में नहीं आया था।

एक दिन स्कूल से लौटने पर अप्पू को मीठा पकवान मिलता है जो विशेष अवसर पर ही बनाया जाता है। दोस्त चक्कन से अप्पू को पता चलता है कि घर में मेहमान आए थे। पहाड़ी प्रदेश वयनाडु से दीदी को देखने कोई आया था। शंकरन नायर बता रहा था कि उसके पास सरकार से मिली चार एकड़ ज़मीन है। बिटिया को कोई तकलीफ नहीं होगी। मेहनत करने पर आराम से गुज़ारा हो सकता है।

इस घटना के बाद एक दिन सुबह दीदी अप्पू को जगाती है। नहलाती है। माड़-भात पिलाने के बाद कपड़े पहनाती है और फिर सारी सलाहें देती है। फिर अप्पू को छाती से लगाकर टूटी आवाज़ में पुकारती है – ''मेरे बेटे।'' फिर रुद्ध कंठ से अप्पू से कहती है – ''बेटे, मुझे एक दफे 'माँ' कहकर पुकार।'' अप्पू को अच्छा नहीं लगा था। वह दीदी से पूछता है – ''दीदी कैसे माँ होगी?'' दीदी ने उसका जवाब नहीं दिया। वह उसे स्कूल रवाना कर देती है। अप्पू समझ गया कि दरवाज़े के सहारे खड़े दीदी उसे एकटक देख रही है।

उस दिन शाम, अप्पू जब स्कूल से लौटकर दीदी को पुकारता है तो नानी ही जवाब देती है। बार–बार पूछने पर नानी कहती है कि दीदी नहीं है। नानी तसल्ली देती है कि दीदी आ जाएगी और अप्पू के लिए गेंद भी लाएगी। अप्पू को गुस्सा आ रहा था कि उसे साथ लिए बिना, अनबोले दीदी क्यों गई? नानी माड़– भात पीने के लिए बुलाती है। अप्पू बाहर निकलता है। वह सोचता है यदि दीदी रबड़ का गेंद लाकर देगी तो, वह दूर फेंक देगा। फिर ख्याल आता है, अगर गेंद और मिठाई दोनों लाई तो क्या करना चाहिए। वह असमंजस

में पड़ जाता है। दीदी बिना बताए चली गई है, इसीलिए दीदी के प्रति थोड़ा मान है, लेकिन उम्मीद है, अवश्य दीदी जल्दी लौट आएगी। उसे पता नहीं है दीदी शादी के वास्ते चली गई है। बच्चे के दिल की निरीहता को गहराई से दर्ज करते हुए ही कहानी समाप्त होती है।

1-6 ^nhnh* dgkuh dk fofHkUu vk;ke

1-6-1 ufrd ekU;rkvksa o eY;ksa dh f'kdkj L=h dh =klnh

दीदी कहानी की प्रमुख पात्राएँ हैं अप्पू की दीदी और नानी। सबसे त्रासद चरित्र दीदी का है। अप्पू के खयालों के ज़रिए ही दीदी की त्रासदी भी उन्मीलित हुई है। इसीलिए कहानी का शीर्षक 'दीदी' रखा गया है। कहानी में सिर्फ इसका संकेत है कि कुमारी मालू का किसी आदमी से अनैतिक संबन्ध हो गया था जिसका दुःखद अंजाम उसे भुगतना पड़ा। एक बच्चे को वह जन्म देती है। पर बच्चे के प्रति माँ की ममता व जाहिर नहीं कर सकती। दीदी के बहाने ही प्यार प्रकट करने के लिए वह मज़बूर होती है। अपने बच्चे के मुँह से सिर्फ एक बार ही सही माँ की पुकार वह सुनना चाहती है, लेकिन दीदी पुकारते बच्चा आदी हो चुका है। इसलिए माँ कहने के लिए वह हिचकता है। कुमारी होने के कारण अपना मातृत्व छिपाने के लिए वह मज़बूर है। अपने बच्चे के सामने वह खुलासा नहीं कर सकती कि वह उसकी माँ है। माँ की सलाह से अपने भविष्य की खातिर इस राज को वह छिपाती है।

अप्पू की परवरिश इस तरह हुई है कि वह अपनी माँ को दीदी समझता है और दीदी के अनुरोध के बावजूद वह उसे माँ पुकारता नहीं है। अपने मातृत्व का गला जबरदस्ती घोंटने के लिए मज़बूर अनेक संदर्भों का चित्रण कहानी में हुआ है। जब माँ बात–बात पर अपने बच्चे को फटकारती है तो मालू खुलकर कहती है – ''उसे कोस कोस कर मार डालेगी।'' जवाब में माँ ड़ाटने के साथ व्यंग्य कसती भी है – ''ऐसे ही शक्कर समझकर क्यों चाट नहीं लेती? तब खून के रिश्ते की बात उठाती है तो माँ जैसे गाय सीग तानकर आगे आती है वैसे ही उछलकर बरस पड़ती है – ''अरी.... किसी ऐरे–गैरे से ..... हाय राम। मुझसे ज़्यादा कहलवना नहीं री....'' जब माँ अपने अनैतिक संबन्ध का जिक्र करती है तो मालू को सिसकने के सिवा और कोई चारा नहीं रह जाता।

रात को बेटा अप्पू खाने बैठता तो मालू भी पास बैठ जाती। कौर बनाकर अप्पू को खिलाना उसे पसंद है। लेकिन अपनी माँ के सामने कौर बनाकर खिलाने वह डरती है। माँ डाटती भी है – ''वह क्या दुधमुँहा बच्चा है कि तू कौर बनाकर खिलाती है।''

मालू के बिगड़े चरित्र से रूठकर भाई कुमारन घर छोड़कर चला जाता है। कभी-कभार वह माँ को देखने आता है, लेकिन फाटक के बाहर ही खड़ा रहता है। घर में पैर नहीं रखता। माँ सफाई देती है कि मालू तो उसके पेट से जन्मी है। पर कुमारन माँ पर इल्जाम लगाता है कि सदाचार की सीख बेटी को पहले से ही देनी चाहिए थी। जब अप्पू अपनी तरफ घूरते आदमी के बारे में पूछता है तो मालू कहती है कि वह तेरा मामा। घर न आने की वजह पूछने पर जवाब न देकर सिर्फ रोती रहती है। यों अनजाने ही सही भाई को घर से खदेड़ने का इल्जाम भी मालू के सिर पर ही आ जाता है। उसके ऐरे गैरे से संबन्ध रखने और शादी के पहले अप्पू को जन्म देने की सजा भाई को भुगतनी पड़ती है। यह हकीकत मालू के सदमे को और गहराता है।

आखिर अपनी गलती का सबसे त्रासद परिणाम मालू को भुगतना पड़ता है। अपने बच्चे को छोड़कर जाने के लिए वह मज़बूर हो जाती है। दलाल शंकरन नायर मालू के साथ शादी

करने एक नेक आदमी को पटाकर ले आता है। वह मालू की माँ को समझता है कि बिटिया को कोई तकलीफ न होगी। सिर्फ यह शर्त है कि मालू के बच्चे होने की भनक तक उसके कान में न पड़े। मालू माँ से पूछती है कि यह धोखाधड़ी है न? पर माँ का जवाब है कि यह सब शंकरन नायर ठीक कर देगा। वह फिर समझाती है कि जो हो गया सो हो गया। अगर यह ठीक हुआ तो बेड़ा पार ही समझो। अगर हाथ से निकल गया तो ज़िंदगी भर पछताना पड़ेगा। जब मालू अप्पू का जिक्र करती है तो माँ बेरहमी से पेश आती है और चिल्लाने लगती है – ''अप्पू–शिप्पू जब मैं इस बला से छुटकारा पाना चाहती हूँ तब तू तो....''

एक रात को मालू संदूक में अपने सामान करीने से रखती है। सुबह वह अप्पू को जगाती है, नहलाती है। माड़-भात पिलाने के बाद कपड़े पहनाती है। बाल संवारते वक्त अप्पू को समझाती है कि स्कूल जाते समय संभल कर जाना, बच्चों से झगड़ा मत करना, नानी का कहना मानना और नखरे मत दिखाना। फिर अप्पू को छाती से लगाकर टूटी–सी आवाज़ में 'बेटे' पुकारती है और अनुरोध करती है – ''बेटे, मुझे एक दफे 'माँ' कहकर पुकार।'' लेकिन अप्पू सवाल करता है कि दीदी कैसे माँ होगी।'' मालू ठिठक जाती है। कुछ देर बाद उसे स्कूल रवाना करती है और उसका गमन दरवाज़े के सहारे खड़े एकटक देखती रहती है।

यों कहानी में एक असहाय लड़की की पराश्रित ज़िंदगी पूरी आदरता के साथ रेखांकित हुई है। समाज और परिवार के सामने वह अपराधिन है। समाज में बरकरार नैतिक मूल्य को उसने उल्लंघित किया था। शादी के पहले ही उसने एक बच्चे को जन्म दिया। इसलिए घर में भी उसे कोई मान्यता नहीं। अपने पेट में जन्म लेने की वजह से माँ उसकी देखभाल करती है; साथ उसके बच्चे की भी। अपने बच्चे के सामने वह माँ नहीं बल्कि दीदी है। माँ की ममता वह जाहिर नहीं कर सकती। माँ की पुकार सुनने के लिए उसका दिल तड़पता है। लेकिन जैसे सूचित किया गया दीदी पुकारने का आदी होने के कारण बच्चा हिचकता है।

उसकी माँ तो बेटी के भविष्य पर चिंतित है। किसी न किसी प्रकार उसकी शादी करनी है। बेटी के बच्चे होने की हकीकत को छिपाकर ही मालू की शादी होती है। यों मालू अपने बच्चे को छोड़ कर जाने के लिए मज़बूर हो जाती है। पता नहीं उसकी आगे की ज़िंदगी कैसे कटेगी? कहानीकार ने पूरी संवेदना के साथ एक कुँआरी माँ की पीड़ा और छटपटाहट को उकेरा है।

और एक गौरतलब बात यह है कि कहानी में माँ और दीदी को एकत्रित कर दिया गया है। यहाँ माँ दीदी का बहाना या अभिनय करती है। वही माँ का प्यार भी जाहिर करती है। पर विडंबना है कि आखिर वह न माँ व दीदी का दायित्व निभा नहीं सकती है, दोनों से वंचित हो जाती है। तत्कालीन समाज में मान्य नैतिक चेतना ही उसकी ज़िंदगी को त्रासद बनाती है।

जैसे सूचित किया कहानी की दूसरी प्रमुख पात्रा है नानी यानी मालू की माँ। नानी का कार्यकलाप भी अप्पू के नज़रिए से ही कहानी में प्रस्तुत है। सतही नज़र में नानी क्रूर लगती है, लेकिन उसकी आदतें भी मज़बूरी से उद्भूत है। समाज के नैतिक बोध की शिकार है नानी। नैतिक मूल्यों को बरकरार रखने की कोशिश की वजह से ही वह अपनी बेटी और पौत्र से बेरहमी से पेश आती है। अप्पू को लगता है नानी का काम ही फटकार और गालियाँ सुनाना है। सुबह उठते ही गालियों की बौछार शुरू हो जाती – ''दोपहर होने पर ही छोकरा उठता है। तेरे जन्मते ही घर का सत्यनाश हो गया है कि नहीं!'' दंतून करते समय थोड़ा पानी नीचे गिर गया तो गाली शुरू कर देती'' – ''दतमीज़, हड्डी पसली एक करके फर्श

की लीपा पोती की है मैंने।'' यदि दीदी अप्पू को कौर बनाकर खिलाती तब भी नानी डांटती – ''यह क्या दुध मुँहा बच्चा है कि तू कौर बनाकर खिलाती है।''

दरअसल नानी को अप्पू से इसलिए इतना गुस्सा आता है कि वह नाजायज संतान है। बेटी ने शादी के पहले ही उसे जन्म दिया था। उसे मज़बूरन परवरिश करनी पड़ती है। बेटी के बिगड़े चरित्र या अप्पू की वजह ही नानी का एकमात्र बेटा कुमारन उसके अलग रहता है। कुमारन फाटक तक आता है, पर घर के अंदर पैर रखता तक नहीं। पाँच साल पहले यह प्रण लेकर घर से निकल गया था कि उस घर में पैर रखेगा नहीं। नानी उसके सामने मालू की तरफ इशारा करते हुए गिड़गिड़ाती है – ''मेरे पेट की जन्मी है। मैं कैसे उसे मार डालूँ।'' लेकिन कुमारन ज़िद्दी है। वह नानी की बात मानता ही नहीं।

माँ होने के नाते, नानी अपनी बेटी की भविष्य की ज़िंदगी पर बेहद चिंतित है। यद्यपि बेटी एक बच्चे की माँ है, लेकिन वह युवती है। उसके सामने भरभूर ज़िंदगी पड़ी है। क्या वह बच्चे की परवरिश करते हुए आगे की ज़िंदगी गुज़ार सकेगी? क्या उसे एक आदमी की ज़रूरत और सहारा नहीं चाहिए? इसलिए वह बेटी के लिए आदमी ढूँढ़ती है। दलाल शंकरन नायर मदद करता है। वह मालू के लिए एक आदमी ढूँढ़कर लाता है। उसकी सिर्फ एक ही शर्त है कि बच्चे की भनक तक उस आदमी के कान में न पड़े।

शादी की बात जानकर मालू अप्पू का जिक्र करती है तो माँ समझाती है कि उसकी बात सोचकर मन मारने की कोई ज़रूरत नहीं। इधर-उधर की बातें सोचने से कहीं पहुँच न सकेंगे। जब मालू धोखाधड़ी की बात कहती है तो कड़े स्वर में बताती है कि यह सब सोचने की ज़रूरत नहीं। अगर यह मौका भी हाथ से निकल गया तो ज़िंदगी भर पछताना पड़ेगा। मालू फिर जब अप्पू की बात उठाती है तो वह बरस पड़ती है – ''जब मैं इस बला से छुटकारा पाना चाहती हूँ, तब तो तू....''

नानी बेटी के भविष्य की ज़िंदगी से परेशान है इसलिए उसे अप्पू बला लगती है, उसका ख्याल है कि उसके टलने से ही बेटी की ज़िंदगी बन सकती है। मालू को देखने एक आदमी आता है। शादी तो उसके यहाँ करने का निर्णय होता है। घर से निकलने के पहले मालू अप्पू को स्कूल रवाना करती है। शाम को स्कूल से लौटने पर नानी अप्पू से प्यार से पूछती है – ''आज इतनी जल्दी कैसे आया? अप्पू दीदी को पुकारता है तो नानी ही जवाब देती है कि वह यहाँ नहीं है। एक जगह गई है। फिर तसल्ली देते हुए बताती है – ''दीदी आ जाएगी, अप्पू के लिए गेंद लाएगी।'' अतः यह स्पष्ट है कि यद्यपि नानी बात-बात पर अप्पू को फटकराती है, पर दिल से बुरी नहीं है। दरअसल अपनी बेटी की ज़िंदगी की खातिर वह परेशान है। इसलिए अप्पू के साथ प्यार से वह पेश नहीं आती। जब बेटी की शादी पक्की हो जाती है, उसे सहारा मिल जाता है तो अप्पू के प्रति दिल की कलुषता भी काफूर हो जाती है। बेटी के घर से जाने के बाद जिस ढंग से नानी अप्पू से पेश आती है, उससे पता चलता है कि अप्पू की परवरिश की जिम्मेदारी खुद ले ली है। नानी की आकुलता, परेशानी और अप्पू के प्रति कटुता के पीछे बेटी के प्रति प्यार है, उसकी ज़िंदगी है। पर समाज में बरकरार नैतिक बोध और मूल्यों के पालन के लिए मज़बूर हैं स्त्रियाँ। विडंबना है कि इनकी त्रासद शिकार भी ये ही हैं। समाज द्वारा निर्मित प्रतिमानों को नकारने की ताकत इनमें नहीं हैं।

1-6-2 cPpk dh fujhgrk dk mUeyu

'दीदी' कहानी का सबसे प्रमुख पात्र बच्चा अप्पू है। पूरी कहानी अप्पू के विचारों व कार्यकलापों के ज़रिए ही बताई गई है। अप्पू पाँच छः साल का बच्चा है। इसलिए कहानी

का केन्द्र भाव निरीहता है और यही कहानी के त्रासद बनाती है। कहानी के ज़्यादातर पात्रों का अप्पू से संबन्ध है। दलाल शंकरनायर और मामा कुमारन से उसका सीधा रिश्ता नहीं है, पर दोनों की बातें वह सुनता है और दोनों के आचरणों के वह गवाह भी है।

जैसे उपर्युक्त सूचित किया गया, संपूर्ण कहानी में बच्चे अप्पू के निरीह चरित्र की बारीकी उभर कर आई है। कहानीकार ने अप्पू के मन की गहराइयों में पैठकर उसके खयालों को परत–दर–परत उकेरा है, ऐसा लगता है रचनाकार खुद बच्चे में तब्दील हो गया है। अप्पू का गहरा संबन्ध अपनी माँ से है, जो दीदी का बहाना करती है। घर में दीदी की माँ यानी नानी भी है जो बात-बात पर दोनों को डांटती रहती है। नानी के डांटने पर दीदी रोती है, पर दीदी का रोना उसे अच्छा नहीं लगता। अप्पू को रोना नहीं आता बल्कि गुस्सा आता है। कभी-कभी रोते-रोते दीदी उसे गले लगाती है और प्यार से लिपटाती भी है। आँसू उसके बदन पर टपक पड़ते हैं, तब वह रुआँसा हो जाता है।

अप्पू को दीदी बेहद पसंद है। सवेरे स्कूल जाने से पहले दीदी ही उसे नहलाती। माड़-भात परोस देती। उसके बाद कमीज़ और जाँघिया पहनाती। बालों पर कंघी करके चेहरे से तेल की चिकनी परत पोंछ देती और उसे स्कूल रवाना करती। रात को वह खाने बैठता तो पास दीदी भी बैठ जाती। दीदी का कौर बनाकर खिलाना उसे पसंद था। लेकिन नानी के सामने नहीं खिलाती क्योंकि नानी डांटती है। रात को खाना खाते ही अप्पू लेट जाता। लेकिन जब तक दीदी नहीं आती, वह नहीं सोता। रसोई साफ करके ही दीदी आती। दीदी से लिपटकर सोना और कहानी सुनना भी अप्पू को पसंद है। तभी वह अपने दिल के सारे संदेह दीदी से पूछता है। दीदी कभी अप्पू से नाराज़ नहीं होती।

एक दिन अप्पू के स्कूल का दोस्त कुट्टिशंकरन बातचीत के बीच उससे कहता है कि दीदी उसकी दीदी नहीं बल्कि माँ है। उसने तो अपनी माँ से यह बात सुनी थी। लेकिन अप्पू को उसकी मूर्खता पर गुस्सा आया। कनपटी पर तमाचा लगाने का मन हुआ। दोनों झगड़ा करने लगे। उपहार में दिए नींबू कुट्टिशंकरन ने वापस मांगा। अप्पू ने नींबू उसके सामने फेंक दिया। अप्पू सोचता है कि दीदी कैसे माँ बन सकती है? मुझे बस दीदी चाहिए। माँ नहीं चाहिए। माँ होती तो क्या-क्या मुसीबतें झेलनी पड़ती है। वह तो हर दिन देखता रहता है कि दीदी की माँ दीदी को कितना सताती है। एक पल भी चैन से बैठने नहीं देती। इसलिए किसी भी कीमत पर माँ नहीं चाहिए।

एक दिन जब अप्पू स्कूल गया हुआ था, दीदी को देखने कोई आदमी आता है। उसी दिन शाम अप्पू का दोस्त चक्कन ने सूचना दी थी घर में मेहमान आए थे। अप्पू को मीठा पकवान मिला था। ऐसे ही और एक दिन सुबह दीदी उसे जगाती है। नहलाती है। माड़-भात पिलाकर कपड़ा पहनाती है। नानी की बात मानने और नखरे मत दिखाने का अनुरोध करती है। तब अप्पू स्पष्ट बोलता है कि नानी बुरी है, मुझे तो सिर्फ दीदी चाहिए। दीदी अप्पू को छाती से लगाकर पुकारती है – 'मेरे बेटे'। फिर अप्पू से कहती है कि बेटे तुम मुझे एक दफा माँ पुकार। सुनकर अप्पू को अच्छा नहीं लगा और एकाएक पूछता है – ''दीदी कैसे माँ होगी? दीदी ने जवाब नहीं दिया। वह उसे स्कूल रवाना कर देती है। अप्पू ने जब पीछे मुड़कर देखा तो पता चला कि दीदी उसे एकटक देख रही है।

उसी दिन शाम को जब अप्पू स्कूल से वापस आया तो दीदी के बदले नानी ही उसकी अगवानी करती है। अप्पू दीदी को पुकारता है तो नानी ही जवाब देती है कि आज इतनी जल्दी कैसे आ गया? दीदी दिखाई नहीं दी तो अप्पू फिर पूछता है। नानी कहती है कि दीदी एक जगह गई है और वापस आते अप्पू के लिए गेंद लाएगी। अप्पू सोचता है, दीदी उसे साथ लिए बिना, बिना बोले क्यों गई? उसे गुस्सा आया। अजीब है दीदी। यदि दीदी आए

तो बात तक नहीं करेगा। वह बाहर निकल जाता है। नानी माड़-भात पीने उसे पुकारती है। अप्पू को जी भर रोने की इच्छा हुई। अगर दीदी गेंद और मिठाई दोनों लाए तो क्या करना चाहिए। उसे संदेह होता है। वह फिर सोचता है कि यह दीदी भी अजीब है। कैसी पगली है, बिना बताए चली गई।

बच्चा होने की वजह अप्पू यह समझ नहीं पाता कि दीदी की शादी होने वाली है। उस आदमी से यह बात छिपाई गई कि दीदी का बेटा है। दलाल शंकरन नायर की यही शर्त थी कि इस बात का पता न चले। अप्पू की निरीहता और मासूमियत को जाहिर करते हुए ही कहानी समाप्त होती है कि दीदी भी कैसी पगली है। उसके दिल में यह उम्मीद है कि एक दिन ज़रूर दीदी गेंद और मिठाई के साथ आएगी।

यों जैसे शुरुआत में सूचित किया गया पूरी कहानी का अधिष्ठान बच्चे अप्पू की सोच और उसमें निहित उसकी निरीहता है। अपनी ज़िंदगी की त्रासदी से बच्चा बेखबर है, यही बात पाठकों के दिल को आर्द्र बनाता है।

1-6-3 dgkuh e: vfHkO;Dr eukoSKkfud vk;ke

एम.टी., फ्रॉयड़ व युंग के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों को आत्मसात् कर कहानी में पिरोनेवाले मनोवैज्ञानिक कहानीकार नहीं हैं। लेकिन वे मानव-मन के पारखी है। मन की गहराई में गोतें लगाकर, भावों, ख्यालों व उलझनों को पकड़ने की अंतर्दृष्टि उन्होंने हासिल की है। इसकी ज्वलन्त मिसाल है, बच्चों के नज़रिए से लिखी गई 'दीदी' व 'कर्किटकम' जैसी कहानियाँ। दरअसल बच्चों के लिए यह दुनिया चमत्कारों का समुच्चय है। देखे-सुने सब उनके लिए नया ज्ञान है। बुजुर्गों के समाज ने जो कायदे कानून बनाए हैं, समाज में जो रीति-रिवाज़ प्रचलित हैं, इन सबसे वे अनभिज्ञ हैं। इसलिए एकदम ईमानदार कलाकार ही बच्चों के नज़रिए को पकड़ सकता है। बच्चों के ख्यालों के आधार पर लिखी कहानी की यह सीमा हो सकती है कि उसमें उन्हीं बातों का चित्रण संभव है जो बच्चों के ज्ञान की सीमा के तहत आती हों। लेकिन एम. टी. ने इस दायरे का अतिक्रमण किया है। एक तरह उन्होंने इस दायरे का सही ढंग से इस्तेमाल ही किया है। 'दीदी' कहानी इसका ज्वलन्त उदाहरण है। इसमें जैसे हम देख चुके हैं, पाँच, छः साल के बच्चे के चरित्र की सारी खासियतें हूबहू उभर आई हैं। इसी के साथ उसके ही दृष्टिकोण के ज़रिए ही दीदी व नानी की, बातें व आचरण सहज रूप में अभिव्यक्त हो गए हैं। माँ होने के बावजूद दीदी का रोल अदा करने वाली मालू का आत्मसंघर्ष, बेबसी व निस्सहाय भाव बच्चे अप्पू के ज़रिए ही उन्मीलित हो गए हैं। अपनी बेटी की खातिर बच्चे अप्पू से कटुता से पेश आती नानी का चरित्र मनोवैज्ञानिक दृष्टि से जायज हैं। लेकिन बेटी की शादी पक्की हो जाने के बाद उसके दिल का सारा कल्मष दूर हो जाता है और अप्पू के प्रति प्यार और वात्सल्य उभर आते हैं। यों मनोवैज्ञानिक धरातल पर भी दीदी कहानी की अहमियत है।

1-6-4 dgkuh e: mTkkxkfjr dsjy dh ikfjokfjd ftanxh vkj lekt dk Lo:i

यद्यपि 'दीदी' में बाहरी परिवेश का विस्तृत चित्रण नहीं है, पात्रों के विचार एवं आपसी बातचीत से कहानी आगे बढ़ती है, फिर भी इनके माध्यम से ही तत्कालीन समाज और सामाजिक ज़िंदगी की स्पष्ट झलक पाठकों को हासिल होती है। विघटित होती मातृसत्तात्मक पारिवारिक व्यवस्था का चित्रण ही कहानी में हुआ है। अप्पू के परिवार में उसके अलावा दीदी और नानी हैं। कोई बुजुर्ग आदमी नहीं है। दीदी का भाई कुमारन रूठकर चला गया है। परिवार चलाने का दायित्व नानी पर है। नानी के आचरणों से यह स्पष्ट है कि नानी ही

घर संभालती है। मातृसत्तात्मक पारिवारिक व्यवस्था में स्त्री पितृसत्तात्मक व्यवस्था की तुलना में काफी स्वतंत्र है। परिवार में उसकी श्रेष्ठता कायम थी। अपनी पसंद का रिश्ता वह रख सकती थी। एक से ज़्यादा पुरुषों से संबन्ध रखने की छूट भी एक हद तक उसे थी। मातृसत्तात्मक पारिवारिक व्यवस्था में यद्यपि अधिकार का केन्द्र पुरुष 'मामा' (uncle) है, लेकिन उनकी संतानों से बढ़कर बहिनों और उनकी संतानों की ज़्यादा अहमियत होती है। मामा की संपत्ति में उनका ही अधिकार होता है। यानी वे ही सही वारिस हैं।

'दीदी' कहानी में पूर्णतः यह व्यवस्था जाहिर नहीं है, लेकिन नानी के चरित्र से यह पता चलता है कि वह उसी व्यवस्था में पली बढ़ी है। अपनी बेटी के भविष्य की ज़िंदगी बनाने के लिए जो पहल वह करती है, उससे उसकी स्वच्छन्द वृत्ति एवं निर्णय लेने की क्षमता का भी पता चलता है।

'दीदी' कहानी की धुरी दरअसल समाज में बरकरार नैतिकता बोध है। केरल की सामंतशाही समाज में और वर्तमान पूँजीवादी व्यवस्था में भी शादी के पहले किसी स्त्री का पुरुष से संबन्ध रखना और माँ बनना घोर अपराध समझा जाता है। आज तो इस अपराध को छिपाने और उससे बचने के आसान तरीके हैं, लेकिन सामंती समाज में उसकी सजा भुगतनी ही पड़ती थी। मालू ने ऐसा ही अपराध किया, जिसकी वजह उसे घर में अपमान सहना पड़ा और आखिर अपने बच्चे को भी छोड़कर जाना पड़ा। केरल की सामाजिक ज़िंदगी का एक त्रासद हिस्सा पूरी सजगता के साथ 'दीदी' कहानी में प्रस्तुत हो गया है।

1-7 Hkk"kk- 'kSyh

कहानी के शिल्प के संबन्ध में एम.टी. ने सूचित किया है कहानी के कथ्य के अनुसार ही शिल्प रूपायित होता है। 'दीदी' कहानी का केन्द्र पात्र बच्चा अप्पू है, अप्पू के खयालों व उससे जुड़ी घटनाओं से ही कहानी आगे बढ़ती है। कहानी का अंत भी उसकी निरीहता को जाहिर करते हुए होता है। इसलिए जिस सरल भाषा में बच्चा सोचता है, वैसी भाषा का ही इस्तेमाल किया गया है। कहानी की सभी घटनाओं का संबन्ध अप्पू से है, ऐसी बातें भी हैं जिन्हें समझाने में अप्पू नाकाबिल हैं, फिर भी हर संदर्भ में सरल भाषा का ही प्रयोग हुआ है।

कथोपकथन पात्रों के अनुकूल ही नियोजित है। जैसी कटु भाषा और अंदाज में नानी बोलती है, उससे उसके चरित्र का अनायास पता चलता है। बेटी के बिगड़े चरित्र की वजह नानी उसे डांटती, फटकारती है। अप्पू से भी वह वैसे ही पेश आती है। भाव के मुताबिक भाषा भी बदल गई है। दीदी और अप्पू के संबन्धों की अभिव्यक्ति के संदर्भ में भाषा एकदम भावुक एवं आर्द्र बन गई है। शादी के निर्णय के बाद यह निश्चित हो जाता है कि मालू को अपने बेटे से बिछुड़ना ही पड़ेगा। जिस तरह मालू अपने बेटे से विदा लेती है, अपने बच्चे के मुँह से माँ की पुकार सुनने के लिए वह कितनी उतावली है, अप्पू की कैसी निर्विकार प्रतिक्रिया है, ये सारी बातें बहुत ही भावुक भाषा व शैली में कहानी में विन्यस्त है। कहानी में ऐसे संदर्भ भी है जिसे बच्चे होने की वजह अप्पू समझता नहीं है। मालू का भाई कुमारन घर छोड़कर चला गया है। अप्पू के पूछने पर कि मामा क्यों घर नहीं आता तो दीदी कोई जवाब नहीं देती। इस संदर्भ में चुप्पी ही जायज है। एक तरफ दीदी अपराधिन है और उसके संबन्ध में बोले तो भी अप्पू समझेगा भी नहीं। सामाजिक नैतिक बोध से बच्चों का क्या सरोकार है। यानी बहुत ही सहज ढंग से कथोपकथन एवं चुप्पी को भी पिरोया गया है। ऐसी घटनाओं का चित्रण भी है जो अप्पू से संबंधित होने के बावजूद अप्पू के लिए श्रेयस्कर नहीं है। ऐसे संदर्भों में नानी उसे खेलने बाहर भेज देती है, नहीं तो अप्पू को और किसी काम में व्यस्त दिखाया गया है। यों बहुत ही सतर्कता और चतुराई से कथ्य को पेश किया गया है कि

पठनीयता में कोई आंच नहीं होती। पूरी कहानी इस तरह बताई गई है या कहानी का शिल्प इतना परफैक्ट है कि पूरी कहानी पढ़ने के बाद ही पाठक को दम लेने की इच्छा होती है।

1-8 lkjk'k

बहुआयामी प्रतिभा से संपन्न मलयालम महान् सृजनकार है, एम.टी. वासुदेवन नायर। साहित्य के साथ फिल्म क्षेत्र में भी उन्होंने अपनी सर्जनात्मकता का गहरा परिचय दिया है। उनकी प्रतिभा की यह ज्वलंत मिसाल है कि चौबीस बरस की उम्र में उपन्यास 'हवेली' के लिए उन्हें केरल साहित्य अकादमी का पुरस्कार मिला था। हालांकी उन्हें अन्य विधाओं से रुचि रही है फिर भी प्रियतम विधा कहानी है। मलयालम कहानी के तीसरे दौर का प्रतिनिधि कहानीकार है एम.टी। जब एम.टी. की पूर्व-पीढ़ी के कहानीकारों की सर्जनात्मकता सामाजिक समस्याओं और विडंबनाओं पर केन्द्रित थी, लेकिन एम.टी. की पीढ़ी व्यक्ति मन की तह में पैठकर मन के ख्यालों के साथ भौतिक समाज के प्रति उसकी प्रतिक्रियाओं को भी उभारने की जद्दोजहद की। व्यक्ति केन्द्रित होने के बावजूद, उनकी कहानियों में सामाजिक परिवेश और समस्याएँ पूरी सिद्दत के साथ प्रस्तुत हो गई हैं।

एम.टी. शुरुआती कहानियों का प्रतिनिधि कहानी है 'दीदी' जो 'अंधेरी की आत्मा' (हिन्दी अनुवाद) संग्रह में संकलित है। इस कहानी की धुरी यह मूल्य चेतना है कि शादी के पहले स्त्री का माँ बनना घोर अपराध है। यदि ऐसा अपराध हो जाता है तो उसे गुप्त रखना है कि लड़की की भविष्य के लिए श्रेयस्कर है, नहीं तो उसकी ज़िंदगी बरबाद हो जाएगी। 'दीदी' कहानी की मालू का शादी के पहले किसी आदमी से अनैतिक संबन्ध हो गया था और उसने एक बच्चे को जन्म दिया। उस आदमी के बारे में दरअसल कोई जिक्र कहानी में नहीं है। मालू के भविष्य की खातिर बच्चे (अप्पू) पर माँ के दीदी पुकारने की आदत डाली गई। मालू की माँ की कोशिश और दलाल शंकरन नायर की मदद से एक आदमी मालू से शादी करने तैयार होता है। शंकरन नायर की सिर्फ एक शर्त थी कि बच्चे की भनक तक उस आदमी के कान में न पड़े। बच्चे को छोड़कर जाने के पहले मालू उसके मुँह से एक दफा ही सही माँ की पुकार सुनना चाहती है, लेकिन अप्पू तैयार नहीं होता। नानी के बरताव से उसका बाल-मन इतना उचट गया था कि उसे माँ नाम से ही चिढ़ है। उसे दीदी ही पसंद है, अप्पू को इसका पता नहीं है कि दीदी उसे छोड़कर चली गई है। नानी अप्पू को तसल्ली देती है कि दीदी, खेलने वाली गेंद के साथ लौट आएगी। यद्यपि अप्पू के मन में थोड़ा मान है कि दीदी उसे साथ लिए बिना और बिना बोले चली गई, फिर भी उम्मीद है कि दीदी ज़रूर वापस आएगी। यों एक माँ के आत्मसंघर्ष, बच्चे की निरीहता और दोनों के बिछुड़न से कहानी त्रासद बन जाती है।

कहानी का केन्द्र पात्र बच्चा अप्पू है और उसके खयालों के ज़रिए कहानी का कथ्य उजागरित होता है, इसलिए भाषा और कथन शैली एकदम सरल है। कहानी में घटनाओं का नियोजन इस तरह हुआ है कि पठनीयता में कोई अड़चन नहीं होती। केरल के एक ज़माने की सामाजिक ज़िंदगी, संस्कृति व मूल्यचेतना का बारीकी चित्रण कहानी में दर्ज है।

1-9 vH;kl

1) एम.टी. वासुदेवन नायर के व्यक्तित्व एवं सर्जनात्मकता का परिचय दीजिए।

2) मलयालम कहानी के विकास का परिचय देते हुए एम.टी. की भूमिका को स्पष्ट कीजिए।

3) एम.टी. के सृजन एवं कहानी संबन्धी विचारों का उल्लेख कीजिए।

4) 'दीदी' कहानी के कथ्य की विशिष्टताओं पर अपने विचार जाहिर कीजिए।

5) 'दीदी' कहानी सामाजिक नैतिक मूल्यों की शिकार बनती नारी की दर्दनाक दास्तान है। समर्थन कीजिए।

6) 'एक बच्चे के निरीह मन की खुली अभिव्यक्ति के कारण ही दीदी कहानी इतनी आर्द्र बनी है।' अपने सुचिंतित विचार प्रस्तुत कीजिए।

7) 'दीदी' कहानी में केरल की एक ज़माने की सामाजिक ज़िंदगी और मूल्य चेतना स्पष्टतः जाहिर हुई है। समझाइए।

8) 'दीदी' कहानी का सारांश तैयार करते हुए उसकी भाषा एवं शैली की खासियतों का परिचय दीजिए।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 2 लड़की जिसकी मैंने हत्या की : विश्लेषण और मूल्यांकन

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 कन्नड़ कहानी और आनन्द का लेखन

2.3 लड़की जिसकी मैंने हत्या की : कथावस्तु, पाठ और विश्लेषण

2.4 'लड़की जिसकी मैंने हत्या की' की भाषा और शैली

2.5 सारांश

2.6 अभ्यास

2.0 उद्देश्य

यह 'भारतीय कहानी' (एम.एच.डी-12) नामक पाठ्यक्रम की दूसरी इकाई है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप कन्नड़ भाषा की कहानी विधा का एक परिचय प्राप्त करेंगी/करेंगे। आप यह देखेंगे/देखेंगी कि भारतीय कहानी में विविधता के बीच एकता है। आपने हिन्दी में भी ऐसी कहानियाँ पढ़ी होंगी जिनमें अन्धविश्वासों का खण्डन है। इस कहानी को पढ़ने के बाद आप यह महसूस करेंगे/करेंगी कि इस कहानी की कथावस्तु भीतर तक द्रवित करने वाली है। यह कहानी अपने पाठकों का विरेचन करने में पूर्णतः सक्षम है। इस कहानी का अध्ययन आपको उस वास्तविक भारतीयता से परिचित कराएगा जिसमें स्त्री का स्थान सर्वोपरि है। वह भारतीय जीवन दृष्टि ही है जो स्त्री की मान रक्षा को सबसे ऊँचा आदर्श मानती है। यह कहानी इसी आदर्श के इर्द-गिर्द घूमती है। इस कहानी के अध्ययन के पश्चात आप 'बसवी' जैसी कुप्रथा के बारे में न सिर्फ जान सकेंगी/सकेंगे बल्कि इसकी नायिका चेन्नी के दुःख और लेखक के उदात्त दृष्टिकोण से भी परिचित होंगी/होंगे। आप देखेंगी/देखेंगे कि साहित्य किस प्रकार समाज का मार्गदर्शन करता है। यह कहानी अपने पाठक के अन्तःकरण में नैतिकता का एक दीपक जलाती है।

2.1 प्रस्तावना

भारतीय कहानी के इस पाठ्यक्रम में प्रमुख भारतीय भाषाओं की कहानियाँ सम्मिलित की गई हैं। कन्नड़ भारत की एक समृद्ध भाषा है। कहने कि आवश्यकता नहीं कि कन्नड़ में महान साहित्य का सृजन हुआ है। भारतीय साहित्य की समृद्धि में कन्नड़ भाषा के साहित्य का योगदान महत्वपूर्ण है। आनन्द इस भाषा के बड़े और उल्लेखनीय कहानीकार हैं। इस पाठ्यक्रम में संकलित उनकी कहानी 'लड़की जिसकी मैंने हत्या की' बेहद मार्मिक, प्रभावी और अन्तःकरण का आयतन बढ़ाने वाली कहानी है। यह कहानी इस बात का प्रमाण है कि कन्नड़ साहित्य अग्रगामी चेतना से सम्पन्न है। यह कहानी अंधविश्वास के अंधेरे में बिला गई मनुष्यता के पुनः संधान की कहानी है। जब यह कहानी समाप्त होती है, पाठक के चित्त और विवेक के पट खुल चुके होते हैं। उसके भीतर की सोई हुई मनुष्यता जाग जाती है।

2-2 dUuM+ dgkuh vkj vkuUn dk y{ku

कन्नड़ भाषा में कहानी की समृद्ध परंपरा है। कन्नड़ भाषा के कहानीकारों और उपन्यासकारों ने भारतीय कथा साहित्य में बहुत कुछ नया जोड़ा है। इस पाठ्यक्रम के लिए संकलित कहानी के लेखक आनन्द का मूल नाम अजामपुर सीताराम था। वे आनन्द के नाम से लेखन करते थे। भारतीय साहित्य के मर्झ शिशिर कुमार दास के अनुसार, आनन्द का जन्म 1902 में हुआ था। वे 1963 तक सृजन कार्य में लगे रहे। इसी वर्ष उनका निधन हुआ। उन्होंने संकलित कहानी 'लड़की जिसकी मैंने हत्या की' (कन्नड़ भाषा में शीर्षक 'नानू कोंडा हुडुगी') की रचना 1931 में की थी। यह कन्नड़ भाषा में चालीस के दशक की सबसे उल्लेखनीय कहानी मानी जाती है। ऐसा स्वीकार किया जाता है कि इसी कहानी से कन्नड़ कहानी में 'संश्लिष्ट आख्यान संरचना' की शुरुआत हुई। आनन्द के लेखन पर कन्नड़ कहानी के पिता माने जाने वाले महान सर्जक मस्ति वेंकटेश आयंगर का गहरा प्रभाव है। आनन्द की इसी कहानी के आधार पर प्रख्यात फिल्मकार एम.एस.सथ्यू ने रिलायंश बिग पिक्चर्स के लिए 'इजोडू' (IJJODU) नामक फिल्म बनाई है। बसवी प्रथा पर आधारित यह फिल्म जून, 2009 में अहमदाबाद अन्तर्राष्ट्रीय फिल्म समारोह में दिखाई गई थी। अभिनेत्री मीरा जैसमीन और अभिनेता अनिरुद्ध ने इस फिल्म में मुख्य भूमिका निभाई है। इस फिल्म को दर्शकों और आलोचकों की पर्याप्त प्रशंसा प्राप्त हुई है। आनन्द की अन्य प्रसिद्ध रचनाएं हैं– मरागति, सुसी विजया और संसार शिल्प।

कहने की आवश्यकता नहीं कि आनन्द उन लेखकों में से एक हैं जिन्होंने भारतीय कहानी का चेहरा निर्मित किया है।

2-3 yM+dh ftl dh eSaus gR;k dh % dFkkoLrq] ikB vkj fo'ys"k.k

सुप्रसिद्ध कन्नड़ कथाकार आनंद की यह कहानी भारतीय समाज को विवेकशीलता और सहृदयता से देखने की एक प्रभावशाली कोशिश है। यह कहानी पूर्वदीप्ति (फ्लैशबैक) शैली में लिखी गई है। इस कहानी का नेरेटर स्वयं लेखक है। प्राचीन भारतीय शिला शिल्पों में नेरेटर की गहरी दिलचस्पी है। उन्हीं का अध्ययन करने के लिए वह तत्कालीन सन् (1931) मैसूर प्रांत की यात्रा पर निकला है। घूमते-घूमते वह नागवल्ली नामक एक गाँव में पहुँचता है। वहाँ वह गाँव के प्रभावशाली व्यक्ति (मुखिया जैसे) श्री करियप्पा के वहाँ ठहरता है। करियप्पा जिस उदार भाव से उसका स्वागत करते हैं, वह उनके बड़प्पन के साथ ही उस भारतीय जीवन मूल्य का भी संकेतक है जिसमें अतिथि देवता होता है। लेखक ने विस्तार से आतिथ्य का वर्णन किया है। इस संदर्भ में कहानी के इस अंश को देखा जा सकता है– 'बरामदे की बगल में ही एक कमरा था। घर के नौकर ने उसका दरवाजा खोलकर सफाई करके चटाई बिछाकर एक दीपक लाकर रख दिया। गाड़ीवान ने मेरा सारा सामान उस कमरे में रख दिया। उसका पैसा चुकता करके मैंने उसे भेज दिया। करियप्पा बोले, 'अब आप कपड़े बदल सकते हैं।' मैंने कमरे में जाकर कपड़े उतारे और धोती कमीज बदलकर आ गया। इतने में किसी ने भीतर से गर्म पानी लाकर धर दिया। मैंने हाथ-पांव और मुंह धोया। आधे घंटे में भोजन भी निबट गया। बाद में बरामदे में पान सुपारी चबाते हुए बैठे रहे। मैंने उन्हें अपनी यात्रा के बारे में विस्तार से बताया। मेरा उनके घर में ठहरना उनके लिए बड़ी प्रसन्नता की बात थी। यह उनकी हर बात से झलक रहा था। बातों ही बातों में उनका भी परिचय मिला। खाता-पीता घर था। चार सौ रुपए लगान देते थे। घर भी खूब बड़ा-सा बना रखा था। गांव भर में वह सबसे बड़ा घर था। सबसे बढ़कर उनकी निष्कपट नम्रता ने मुझ पर प्रभाव डाला। यह गुण उनमें स्वाभाविक रूप से आया होगा मुझे

ऐसा महसूस हुआ। मुझे लगा कि उनके घर में मेरा खूब सेवा सत्कार होगा। यह कहानी का प्रथम भाग है। कहानी की वह प्राण वस्तु जिसके लिए इसको लिखा गया है, वह दूसरे खण्ड में है।

'नेरेटर' अर्थात लेखक सद्गृहस्थ है। वह अपनी यात्रा का विवरण अपनी धर्मपत्नी लक्ष्मी को पत्र के माध्यम से भेजता रहता है। नागवल्ली गाँव में थोड़े आराम और इत्मीनान के बाद वह एक विस्तृत पत्र अपनी पत्नी को लिखता है। यह कहानी उस कालखण्ड की कथा कहती है जब यात्राएं बैलगाड़ी से की जाती थीं और आज की तरह ई-मेल, एस.एम.एस या फोन और मोबाइल फोन की सुविधा नहीं थी। यह अकारण नहीं है कि पच्चीस-तीस वर्ष पहले की कविताओं और गीतों में भी चिट्ठियों का ही संदर्भ आता है। लोकगीतों में तो कबूतर, तोते और चिट्ठियों का ही संदर्भ है। इस कहानी का नेरेटर पत्र लिखकर उसे ठीक से लिफाफे में बन्द कर उसकी गोपनीयता को सुरक्षित करता है। जाहिर है, इसके बाद पत्र को लेटर बाक्स में डालना है। लेखक नहीं जानता कि लेटर बॉक्स कहाँ है। वह अपने कमरे से बाहर निकलकर देखता है तो एक लड़की बैठी हुई दिखती है। उस लड़की को बेटी सम्बोधित कर वह उससे लेटर बाक्स का पता पूछता है। लड़की आग्रह करके वह पत्र लेटर बाक्स में डालने के लिए ले लेती है। संवाद के इसी क्रम में लड़की का संक्षिप्त नाम सामने आता है— चेन्नी। चेन्नी अर्थात् चेन्नम्मा। पूरी कहानी इसी चेन्नी के इर्द-गिर्द घूमती है।

यह चेन्नी कौन है, कैसी है, यह भी जानते चलते हैं। लेखक ने उसका परिचय देते हुए जो लिखा है, सीधे-सीधे उसे ही देखते हैं— पहला परिचयः 'वह जरा मुस्कुराई। गाँव की उस बच्ची की विनयशीलता और सरलता देखकर मुझे बड़ा संतोष हुआ।'

दूसरा परिचय : 'चेन्नम्मा जन्म से ही मुस्कुराहट लेकर आई होगी। मैंने जब भी देखा उसके सरल मुख पर मुस्कान ही दिखाई दी। वह मृदुभाव से इधर-उधर घूमती कोपलों में घुसकर फूलों के गुच्छों से होती हुई परिमल से परिपूर्ण ठंडी बयार के समान हृदय में नन्हीं तरंगे उठाने वाली सरल मुस्कान थी। आंधी में फंस जाए तो केवल धूप मिलती है, आंख और मुंह में मिट्टी भर उठती है। उसमें सौरभ नहीं रहता। गांव की उस लड़की की हंसी! ओह! वह तो मल्लिका के फूल के समान थी। मल्लिका के फूल की शुभ्रता का क्या कहना है ? कैसा परिमल?'

चेन्नी अर्थात चेन्नम्मा के व्यक्तित्व में सुन्दरता, सहजता और सहृदयता का विरल संयोग है। लेकिन इसके ठीक बाद चेन्नी के जीवन की उस विडम्बना का पता चलता है, जो अंधविश्वास की कोख से पैदा हुआ है। रात के अंधेरे में चेन्नी नेरेटर के कमरे में आती है तो नेरेटर को पता चलता है कि वह 'बसवी' है। इस प्रसंग को समझने के लिए सीधे कहानी का यह अंश देखते हैं—

'अरे मालिक, ऐसा क्यों कहते हैं ? मेरी शादी नहीं हुई है, मैं बसवी हूँ ?'

'क्या ? क्या ? क्या कहा ?'

'मुझे बसवी बनाकर छोड़ दिया गया है मेरे मालिक।'

'बसवी, बसवी! इसके माने?'

'भगवान के नाम पर छोड़ दिया है।'

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

मैंने पूछा, 'भगवान के नाम पर छोड़ दिया है ? किसने ?'

'माता-पिता ने।'

'क्यों छोड़ दिया ?'

'मालिक, आज से आठ वर्ष पहले मैं बहुत बीमार पड़ी थी। तब मेरे माता-पिता ने मरडी भगवान के नाम मन्नत मांगी कि यदि मैं ठीक हो जाऊँ तो उस भगवान के नाम पर मुझे बसवी छोड़ देंगे। मैं ठीक हो गई, मालिक।'

'तो तुम शादी नहीं करोगी?'

'नहीं, मालिक।'

'यूं ही रहोगी।'

'हां, मालिक।'

यही वह स्थल है, जहाँ से आपको विडम्बना की पहचान करनी है। बेटी के बीमार होने पर माता-पिता उसके जीवन के लिए चिन्तित हैं। उनकी एक ही अभिलाषा है कि बेटी का जीवन बच जाए लेकिन इसका दूसरा पक्ष अंधेरे से भरा है। बेटी बच जाएगी तो उसे 'बसवी' बना देंगे। 'बसवी' देवदासी से मिलती-जुलती एक प्रथा थी। लेखक रेखांकित करना चाहता है कि क्या ईश्वर से उसका जीवन इसलिए मांगा था कि बसवी बनाकर रोज-रोज मरने के लिए छोड़ देंगे। वह भी ईश्वर के नाम पर। यह तो ईश्वर और धर्म को कटघरे में खड़ा करना है। ईश्वर परम औदात्य का प्रतीक है फिर वह एक बच्ची के लिए 'बसवी' जैसे जीवन की सृष्टि क्यों करेगा! यह विशुद्ध अंधविश्वास का मामला है। लेखक आधी आबादी के पक्ष में इस कुरीति पर प्रहार करता है। कथा के क्रम में वह कई बार अपनी पत्नी को याद करता है। स्मरण बार-बार दिखाई देता है। यह लेखक के भीतर अपनी पत्नी के प्रेम का प्रकटीकरण तो है ही, स्त्री मात्र के प्रति उसके सम्मान के भाव का भी प्रकटीकरण है। लेखक इस बात से आहत है कि यह कौन सी प्रथा है जो एक भावनाओं और सपनों से भरी बच्ची को बसवी बनाकर लोगों की 'सेवा' के लिए प्रस्तुत करने में गरिमा और संतोष का अनुभव करती है। जाहिर है, यह ईश्वर को कलंकित करने की कोशिश है।

नेरेटर चेन्नी से लम्बा संवाद करता है। उस संवाद के कुछ अंश उद्धृत करने से कहानी का मंतव्य और स्पष्ट होगा। नेरेटर परम्परागत ढंग से चेन्नम्मा को समझाना चाहता है। उसके भीतर धर्म और ईश्वर का जो गलत भय पैदा किया गया है, उसे निकालना चाहता है। वह कहता है– 'तो सुनो, स्त्री के लिए मान ही प्राण है। मान खो देने वाली स्त्री का जीवन बहुत खराब होता है। तुम लोगों के पास जो कुछ भी है वह मान ही है। तुम लोगों को उसे ऐसे ही नहीं बेचना चाहिए। ज्ञानियों का कहना है कि मानहीन स्त्री के लिए नरक में भी स्थान नहीं है।'

चेन्नम्मा प्रतिवाद करती है। उसके प्रतिवाद में वह सीख है, जो उसके भीतर भर दी गई है। वह कहती है– 'मालिक, तो शादी वाली स्त्रियों के लिए, जिनके पति हैं, आपकी बात ठीक है, वे हमारी जैसी हो जाएं तो उन्हें जाति से बाहर कर दिया जाता है। हमारे लिए तो आप जैसे कुलीनों की सेवा ही ....।'

लेखक फिर समझाता है– अरे चेन्नम्मा। तुम समझती नहीं। सुनो भगवान के नाम पर स्त्रियां यदि मान खो दें तो क्या वे पसंद करेंगे ? भगवान की मन्नत की है तो भगवान की सेवा करो, कौन मना करता है। वह छोड़कर इस प्रकार मान नहीं गँवाना चाहिए ?'

चेन्नम्मा इसका भी उत्तर देती है– 'मालिक आप जैसे कुलीन ही हमारे लिए भगवान हैं। आपकी सेवा ही हमारा पुण्य है।'

इसके बाद इस प्रथा पर नेरेटर के अपने भाव चिन्तन के रूप में कहानी में आए हैं। कहानी की पंक्तियाँ हैं– 'उसकी बातें सुनकर मेरे हृदय में यह उद्‌गार निकला, 'हाय भगवान। तुम्हारे नाम पर तुम्हें खुश करने का कितना अन्याय और पाप चल रहा है।' कुछ देर कुछ बोला नहीं। कुछ देर सोचने में लगा रहा। यह इन लोगों की कितनी बड़ी मूढ़ता है। संसार में ऐसी घृणित परिपाटी भी है। भगवान के नाम पर छोड़ देना तो सुना है। वह तो अपनी-अपनी भक्ति है। पर यह काम ? इसी प्रकार लोग कैसे हीनकार्य कर रहे हैं ? इनका क्या बनेगा ? यह लड़की सचमुच गांव की एकदम अनजान भोली युवती है। स्त्रियों का लक्षण ही कुछ और होता है। यह अपनी जनता के हीन रिवाज की शिकार भोली-भाली लड़की है। इसका दृढ़ विश्वास है कि जो यह कह रही है, उससे भगवान की मन्नत पूरी होगी। हाय भगवान! माता-पिता ही अपनी बेटी को पाप के गर्त में धकेलते हैं। उनका क्या होगा ? इसका क्या होगा ? उन्होंने यह समझा होगा कि उनके मन्नत मानने से बेटी मरने से बच गई। परंतु प्रत्येक दिन वह जो काम करती है, उससे उसके जीवन का स्त्रीत्व ही दिन-दिन मर रहा है। यह उन्हें कैसे समझाए, जब यह बच्ची थी तब एक क्षण में मर जाने के बदले अब हर दिन, हर क्षण, तिल-तिल करके मर रही है, क्या वह यह बात समझते हैं ? नहीं, यही तो आश्चर्य की बात है, उसका पूर्ण विश्वास है कि वह जो कर रही है, ठीक है। वह कार्य भगवान को प्रिय है। उसके बचाए जीवन को इस प्रकार उपयोग में लाए तो उसकी प्रिय सेवा होगी ? विवाहित स्त्री जिस कार्य को बुरा मानती है, वह अपने उसी कार्य को जीवन का धर्म मानकर चल रही है। इसमें उसके माता-पिता सहायक हैं। बेचारे, वे भी भला क्या करें ? वे भी जाति के रिवाजों की बलि हो गए हैं।'

यह कहानी इसी बात को दर्ज करने के लिए लिखी गई है। लम्बे तर्क-विर्तक के बाद चेन्नम्मा नेरेटर की बातों का मर्म समझ जाती है। उसे इस बात का बोध हो जाता है कि उससे जो कुछ कराया जा रहा है, उससे भगवान कभी प्रसन्न नहीं होंगे। यह भगवान की इच्छा नहीं है। भगवान अपनी संतान से कोई ऐसा कर्म क्यों कराएंगे जिससे मान-सम्मान और आत्मा को क्षति पहुँचती हो। लेखक रोते हुए कहता है– 'चेन्नमा, भगवान तुम्हारी रक्षा करें।'

इस कहानी का अंत इस अर्थ में सुखद है कि चेन्नम्मा को 'सत्य' का बोध हो जाता है लेकिन अपनी पूर्णता में यह कहानी दुखान्त है। सुबह में नेरेटर को पता चलता है कि कुएं में चेन्नम्मा की लाश मिली है। यह खबर सुनकर वह बेहोश हो जाता है। लोग पानी छिड़ककर उसे होश में लाते हैं। कह सकते हैं कि इस घटना से लेखक को काठ मार गया है। उसकी समझ में नहीं आ रहा है कि यह क्या हो गया है! रात में जब वह लौटी थी तब लेखक को लगा था कि उसने एक बच्ची को नरकीय जीवन से उबार लिया है लेकिन यहाँ तो पक्षी ने पिंजड़ा ही छोड़ दिया। और इस तरह की घटनाओं में जैसा होता है वैसा ही चेन्नम्मा के साथ भी हुआ। चेन्नम्मा ने पुलिस रिकार्ड के अनुसार आत्महत्या की है। बीस वर्ष की उम्र में जब सपने आकार लेना शुरू करते हैं, चेन्नम्मा मृत्यु की गोद में सो गई। वह एक घृणित प्रथा की बलि चढ़ गई। तथ्यात्मक रूप से उसने आत्महत्या की लेकिन दरअसल वह एक हत्या थी। उसके माता-पिता भी घृणित प्रथा के निरीह शिकार थे। चेन्नम्मा यदि जीवित रहते हुए बसवी रहने से इंकार कर देती तो अंधविश्वास में डूबा समाज उसे जीने नहीं देता। मृत्यु उसकी चाहत नहीं, विवशता है। लेखक आत्मग्लानि में डूबा है कि यदि उसने चेन्नम्मा को न समझाया होता तो शायद वह मृत्यु का वरण न करती। जाहिर है, यह नेरेटर अर्थात् लेखक के भीतर की मनुष्यता की आवाज है। कहानी

का शीर्षक भी इसी आत्मग्लानि का बोध कराता है। कहानी की अंतिम पंक्ति इस अर्थ में महत्वपूर्ण है कि इस पूरी घटना पर एक स्त्री अर्थात लेखक की पत्नी लक्ष्मी की राय क्या होगी ? अर्थात् एक स्त्री के दुःख, बसवी की प्रथा और एक युवती की अकाल मृत्यु पर एक स्त्री की प्रतिक्रिया सर्वोपरि होगी। उम्मीद की जा सकती है कि लक्ष्मी में वैसा ही विवेक और आदर्श होगा जैसा कि उसके पति अर्थात् कहानी के नेरेटर में है। मनुष्यता में आस्था का विवेक और आदर्श।

2.4 'लड़की जिसकी मैंने हत्या की' की भाषा और शैली

कथाकार आनंद की इस कहानी की भाषा गत्यात्मक है। अनुवाद में भी कहानी पढ़ते हुए भाषा की गतिशीलता का बोध बना रहता है। भावों की तीव्रता को व्यक्त करने के लिए जिस भाषिक सामर्थ्य की आवश्यकता होती है, वह आनंद के पास है। इस कहानी के अनुवादक की भी प्रशंसा करनी होगी। इस कहानी को पढ़ते हुए यह प्रतीत ही नहीं होता कि यह मूल रूप से हिन्दी में लिखी गई कहानी नहीं है। पाठक को कहीं भी भाषिक गतिरोध का सामना नहीं करना पड़ता।

कथाकार आनंद अपनी बात को कितने प्रभावी ढंग से कहते हैं, यह देखने के लिए इस अंश को पढ़ना पर्याप्त होगा– 'चेन्नम्मा ने मुंह न खोला, सिर फिर से झुका लिया। मेरे देखते ही देखते आंसू की दो चमचमाती बूंदें उसके गालों पर से फिसल गईं। वही उसका दिया मौन उत्तर था। उसकी शुभ्र आत्मा को घेरे अज्ञान के पर्दे को उतार फेंकना मेरा काम था। किसी भी स्थान पर पहुंचने के लिए एक रास्ता पकड़कर उस पर कदम रखकर चलते-चलते वह स्थान समीप ही आएगा, इस विश्वास में बहुत दूर चलने के बाद कोई रास्ते में मिले और यह कहे कि हम जिस रास्ते पर चल रहे हैं वह ठीक रास्ता नहीं, बल्कि हम अपने गंतव्य से दूर चले जा रहे हैं, तो कैसा लगेगा? मैंने अपनी बातों से चेन्नम्मा के मन पर लगभग ऐसा ही प्रभाव उत्पन्न किया था।'

कहना न होगा कि आनंद की भाषा में मर्म को छूने की सामर्थ्य है। वे जो कहना चाहते हैं, उनकी भाषा उससे इंच भर भी इधर-उधर नहीं जाती। उदाहरण के लिए, इस अंश को देखिए–

'मुझे इतना ही याद है। जब होश आया तब देखा वहां खड़े दो-तीन लोग मेरे मुंह और सिर पर पानी छपछपा रहे हैं। मेरी नाक से खून बह रहा था। मुझे किसी बात का होश नहीं था। शव के पास आकर बड़ी आशा से देखा कि और जान है कि नहीं। वह केवल भ्रांति थी। यह भ्रम देखकर मन ही मन मैंने अपने से कहा, 'यह कैसा पागलपन है!' उसकी देह में छिपा वह हिमकण कभी का उड़ चुका था। वह पुण्य या पाप से परे हो गया था। अमृत सूख चुका था। बची थी केवल विष की खली।'

इस कहानी को पढ़ते हुए इसके लेखन में अपनाई गई शैली शैलियाँ न सिर्फ रोचक हैं बल्कि कहानी के मंतव्य को प्रभावशाली ढंग से स्पष्ट करने में सहायक भी हैं। इस कहानी में पूर्व दीप्ति शैली, संवाद शैली और एकालाप शैली का प्रयोग है। कहानी का आरम्भ पूर्वदीप्ति शैली में हुआ है। पाठक कहानी के आरंभ में ही उससे बंध जाता है। लेखक के अतीत का चलचित्र उसे अपने प्रभाव में ले लेता है। कहानी के मध्य और अंतिम हिस्से में संवाद शैली का मुख्य रूप से और एकालाप शैली का आंशिक रूप से प्रयोग किया गया है। यह कहानी संवादों के बीच ही खुलती है। 'नेरेटर' के एकालाप से कहानी का मंतव्य बिलकुल साफ हो जाता है। कहने का आशय यह है कि इस कहानी की भाषा और शैली उसके कथ्य का अविभाज्य अंग हैं। इन्हें अलगाकर देखना उचित नहीं होगा।

2-5 lkjka'k

इस इकाई में आपने कन्नड़ भाषा के कथाकार आनंद की दृष्टि सम्पन्न कहानी 'लड़की जिसकी मैंने हत्या की' का अध्ययन किया है। आनंद ने अपनी इस कहानी में ईश्वर के नाम पर प्रचारित-प्रसारित 'बसवी' नामक कुप्रथा पर करारा और विवेक सम्मत प्रहार किया है। उन्होंने यह चित्रित किया है कि अंधविश्वास और भय मनुष्य को सही मार्ग से हटा देते हैं। यह कहानी इस बात को भी रेखांकित करती है कि औदात्य के प्रतीक, मनुष्यता के मूल स्रोत ईश्वर के नाम पर शोषण के तरह-तरह के चक्र समाज में मौजूद हैं। कभी नवजागरण की रोशनी में 'सती प्रथा' के विरुद्ध आवाज उठी थी और भारतीय समाज ने 'सती प्रथा' को स्त्री विरोधी और मनुष्यता के विरुद्ध मानते हुए उसका बहिष्कार किया था। आनंद की यह कहानी 'बसवी प्रथा' के अस्वीकार का साहस और मानस—दोनों पैदा करती है। यह सिर्फ कर्नाटक नहीं, भारत की आधी आबादी के पक्ष में लिखी गई एक अविस्मरणीय कहानी है। भारत सरकार इस प्रकार के शोषण की सभी प्रथाओं के विरुद्ध है और धीरे-धीरे इस प्रकार की प्रथाएँ या तो समाप्त हो चुकी हैं या तेजी से हो रही हैं। यदि कोई कहानी या कविता प्रतिरोध का मानस और साहस पैदा कर पाए तो यह उसकी सबसे बड़ी सफलता होती है। आनंद की इस कहानी का उज्ज्वल पक्ष यही है। यह कहानी उस सुबह की प्रतीक्षा की कहानी है जब समाज में शोषण की कोई जगह न होगी। कहना होगा कि चेन्नी जैसी स्त्रियों की आत्मा को तभी शांति मिलेगी।

2-6 vH;kl

1) 'लड़की जिसकी मैंने हत्या की' कहानी के कथानक की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

2) इस कहानी के आधार पर लेखक का मंतव्य स्पष्ट कीजिए।

3) 'लड़की जिसकी मैंने हत्या की' कहानी की भाषा और शैली पर एक टिप्पणी लिखिए।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

bdkbZ 3 VsfMy % fo'ys"k.k vkSj ewY;kadu

bdkbZ dh :ijs[kk

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 कहानीकार का रचना-संसार

3.3 तमिल कहानी की परंपरा और जयकान्तन

3.4 छापेखाने का जीवन और वातावरण

3.5 मालिक-कर्मचारी के संबंध का लगाव व तनाव

3.6 मजदूर का जीवन और सपनों का टूटना

3.7 मनुष्य से मशीन बन जाने की त्रासदी

3.8 सारांश

3.9 अभ्यास

3-0 mís';

'भारतीय कहानी' पाठ्यक्रम की तीसरी इकाई 'ट्रेडिल' पर आधारित है। उम्मीद है आपने कहानी पढ़ ली होगी। यदि किसी कारण से उक्त कहानी नहीं पढ़ पाये हैं तो पहले उसे पढ़ लें। इसके बाद 'ट्रेडिल' कहानी पर आधारित पाठ से गुजरेंगे तो कहानी की मूल संवेदना तथा समझ के बारे में आपकी स्पष्ट धारणा बन पायेगी। जयकांतन ने इस कहानी के माध्यम से छापेखाने में कर्मरत मजदूर के जीवन की सामाजिक और आर्थिक स्थिति को अभिव्यक्त किया है। उसके जीवन की वास्तविकताओं को अत्यंत संवेदनशीलता के साथ उकेरने का प्रयास किया है। प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप भारतीय समाज में आर्थिक असामनता, अभाव आदि का सहन करने वाले मजदूर वर्ग की जिंदगी की त्रासदी को जान सकेंगे। इस विषय पर गहराई से सोचकर अपनी समझ विकसित कर सकेंगे। इसके साथ-साथ–

- तमिल कहानी का सामान्य परिचय और जयकांतन की सृजनशीलता से आप परिचित हो सकेंगे/सकेंगी।
- 'ट्रेडिल' कहानी का आशय स्पष्ट करते हुए छापेखाने के जीवन की वास्तविकता को आप जान सकेंगे/सकेंगी।
- छापेखाने के मालिक मुरुगेश मुदलियार और कर्मचारी या मजदूर के. विनयाकमूर्ति के संबंध में निहित लगाव और तनाव से आप परिचित हो सकेंगे/सकेंगी।
- विनायकमूर्ति के टूटते-बिखरते सपने के मूल कारण के बारे में जान सकेंगे तथा अभावग्रस्त जीवन के मशीन में तब्दील हो जाने की त्रासदी को समझ सकेंगे/सकेंगी।
- अनूदित कहानी होते हुए भी 'ट्रेडिल' की भाषा-शैली के बारे में आप एक स्पष्ट अवधारणा बना सकेंगे/सकेंगी।

3-1 iLrkouk

डी. जयकांतन तमिल के बहुचर्चित और प्रसिद्ध कहानीकार हैं। जयकांतन ने तमिल कहानी को नई दिशा दी है। 'ट्रेडिल' आपकी अत्यंत ख्यातिप्राप्त कहानी है। यूँ देखा जाये तो 'ट्रेडिल' में कथा नहीं के बराबर है। लेकिन, इसमें 'कहानीपन' का कोई अभाव परिलक्षित नहीं होता। तमाम असुविधाओं और अभावों के बीच कहानी का मुख्य पात्र के. विनायकमूर्ति अपनी अदम्य जिजीविषा प्रदर्शित करता है। यंत्रवत् हो चुके मानव जीवन में यत्किंचित सपने और जीवन-रस का समावेश करते हुए जीवन-संघर्ष जारी रखता है। जीवन को सरस और सुंदर बनाने के लिए, अपने सपनों को काल्पनिक रूप में साकार बनाने के लिए वह कोई न कोई खुराक जुटा ही लेता है। ऐसे जुझारू चरित्र का चित्रण करते हुए कहानीकार ने 'ट्रेडिल' कहानी लिखी है। कथा-नायक विनायकमूर्ति अपने अभावों में घुटने वाला एक पात्र है। वह नित्य-प्रति एक ही ढर्रे पर चलता है। ऐसे में जीवन और व्यक्तित्व का पंगु हो जाना स्वाभाविक है। लेकिन, कथाकार ने उस उबाहट भरी दिनचर्या से अपने कथा-नायक को बचा लिया है। यह कथाकार की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि है। नीरस जीवन को सरस बनाने के लिए जो प्रयास किये गये हैं वह प्रशंसनीय है। सच है कि विनायकमूर्ति भी ट्रेडिल में तब्दील हो जाता है। उसका जीवन भी मशीन में परिवर्तित हो जाता है। लेकिन, उसने बिना संघर्ष किये घुटने नहीं टेक दिये। वह लड़ता रहा, जूझता भी रहा। अभाव और असुविधाओं को पराजित करने के लिए उपाय ढूँढ़ता रहा। यह किसी बड़ी विजय से कम नहीं है, भले ही पराजय का स्वाद चखना पड़े। ऐसी स्थिति में महत्वपूर्ण यह नहीं होता है कि डूबकी लगाने के बाद आपको मोतियों का संधान मिला या नहीं। महत्वपूर्ण यह होता है कि आपने डूबकी लगाई या नहीं।

3-2 dgkuhdkj dk jpuk-lalkj

डी. जयकांतन तमिल के 'मोपासां' के नाम से जाने जाते हैं। स्वातंत्र्योत्तर काल के आप प्रमुख कथाकार हैं। आपका जन्म 2 मई, 1934 को तमिलनाडु के कडलूर में हुआ था। स्कूल में चार वर्षों की औपचारिक शिक्षा प्राप्त करने के बाद जयकांतन का स्कूल छूट गया। एतदनंतर स्वाध्याय किया। लेखन को ही अपना पेशा बनाया जयकांतन ने। साहित्य-सेवा को ही जीवन का मूलमंत्र बनाया। कहानी, उपन्यास, उपन्यासिका, निबंध, कविता आदि विविध साहित्यिक विधाओं में सृजनशील इस रचनाकार ने पत्रिका का संपादन भी किया हैं। साथ ही उन्होंने चलचित्र भी निर्माण किया है। यद्यपि जयकांतन ने विविध क्षेत्रों में कलम चलाई है तथापि उन्हें कथाकार के रूप में सर्वाधिक ख्याति मिली है। तमिलभाषियों ने जयकांतन को 'कहानी सम्राट' (शिरूकदै मन्नद) की उपाधि से विभूषित किया है।

साहित्य अकादमी, ज्ञानपीठ पुरस्कार तथा पद्म भूषण से सम्मानित इस कालजयी रचनाकार ने 150 से भी अधिक कहानियाँ लिखी हैं। इनके कहानी-संग्रहों में उल्लेखनीय हैं–उदयम्, ओरू पिडि चोरू, इनिप्पुम, देवन वरूवारा, माले मयक्कम, शुमैतांगि, युगसंधि, उण्मै शुडुंम, पुदिय वार्पुकल, शुयदरिशनम, इरंद कालंगल, गुरूपीडम, चक्रम निर्शदिल्ले आदि। इनके प्रमुख उपन्यासों के नाम हैं–वालक्कै अलैक्किरदु, उन्नैप्पोल ओरूवन, पारीसुक्लु पो, शिल नेरंगल्लि शिल मनिदरगल, ओरू नडिहै नाडहम पार्क्किराल, ओरू मनिदन ओरू वीडु ओरू उलगम, जय जय शंकर, मनोवेलि मनिदरगल, महायज्ञम आदि। जयकांतन के उपन्यास 'शिल नेरंगल्लि' को साहित्य अकादमी ने सन् 1972 में पुरस्कृत किया है। इस कथाकार ने साहित्यिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक विषयों पर अनेक निबंध लिखे हैं। इनके निबंध–संग्रहों की संख्या पाँच से भी अधिक है। इनमें से मुन्नीट्टम, अवरगल उल्ले

इरूकिराग्गल, निनैत्तुप्पार्क्किरेन, सुदन्दिर चिन्दनै, ओरू प्रजयिन कुरूल आदि अधिक चर्चित निबंध-संग्रह हैं। इसी प्रकार आपने दस उपन्यासिकाएँ भी लिखी हैं। कुछ कविताओं के अलावा कई महत्वपूर्ण साक्षात्कार भी आपकी रचनाधर्मिता की शोभा बढ़ाते हैं। 'ज्ञानरथम' नामक पत्रिका का समर्थ संपादन भी आपने किया था। अपने उपन्यास 'उन्नैप्पोल ओरूवन' के आधार पर आपने फिल्म भी बनाई थी।

उक्त विवरण से स्पष्ट है कि जयकांतन ने विभिन्न विधाओं में रचना की है। उन्हें प्रत्येक विधा के लेखन में अद्भुत सफलता भी मिली है। तमिल कहानी में उनका योगदान सर्वाधिक महत्तवपूर्ण है। उन्होंने तमिल कहानी में नवीन आयामों का उद्घाटन किया है। तमिल कहानी को ही नहीं भारतीय कहानी को नये क्षितिज प्रदान किये। इनकी कहानियों को पाठकों ने तह–ए–दिल से स्वागत किया, क्योंकि इनमें आम आदमी की जीवनगाथाएँ विद्यमान हैं। उन्होंने अपनी कहानियों के बारे में कहा भी है–''मैं जैसा देखता हूँ उसे उसी रूप में अपने दृष्टिकोण से पाठकों की मेरी ये कहानियाँ दिखाने का प्रयास करती हैं।''

जयकांतन ने नाट्य-लेखन में भी अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। उनका प्रसिद्ध नाटक है–'परिसिकुपो'। इतना ही नहीं, जयकांतन ने एक आत्मकथा भी लिखी है–'इल्लक्कईपवदियिन कलैयुलगा अनुभवगल'। इसमें रचनाकार की साहित्यिक दुनिया के अनुभव चित्रित हैं।

ह. बालसुब्रह्मण्यम ने जयकांतन की कहानियों के वैशिष्ट्य पर प्रकाश डालते हुए लिखा है–''जयकांतन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे अपने को आम आदमी से विशिष्ट नहीं मानते। उनके पैर सदा ही धरती पर जमे होते हैं। धूल-मिट्टी के ऊबड़-खाबड़ कच्चे रास्तों पर चलकर, झोपड़पट्टियों में जीनेवाले लोगों के सुख-दुःख में शरीक होते हुए वे उसकी समस्याओं की तह तक पहुँचाते हैं और अपनी रचनाओं में उनका समाधान ढूँढते हैं। अपनी कहानियों और उपन्यासों में जयकांतन ने हमेशा 'दलित' ओर शोषित जन की वकालत की।'' (अपना अपना अंतरंग, पृ.8–9)

तीसरी जमात तक ही औपचारिक शिक्षा पानेवाले दण्डपणि जयकांतन के लिए भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी का कार्यालय पाठशाला बना। वामपंथी विचारधारा की शिक्षा उन्हें प्राप्त हुई तथा धीरे–धीरे वे सुब्रह्मण्यम भारती की रचनाओं से भी परिचित हुए। इनका प्रभाव उनकी रचनाओं में बड़ी मात्रा में पाया जाता है।

जयकांतन का लेखकीय जीवन 1953 के आस-पास शुरू होता है। तमिल की प्रसिद्ध पत्रिकाओं सरस्वती, थमराई, ग्राम उज्झियान और अनंत विकतन–में उनकी प्रारंभिक कहानियाँ प्रकाशित होती हैं। वे अपने को 'तमिल का प्रथम पेशेवर लेखक' मानते हैं जिन्होंने रचनाशीलता से जीवन निर्वाह किया था। लगभग सौ कृतियों के रचनाकार जयकांतन न केवल बीसवीं शताब्दी के तमिल साहित्य के ख्यातिप्राप्त रचनाकार हैं बल्कि संपूर्ण भारतीय साहित्य को नया रूप देने में उनकी कृतियों का बड़ा महत्व है। उनकी रचनाएँ जटिल मानव स्वभाव और भारतीय यथार्थ के प्रामाणिक दस्तावेज के रूप में जानी जाती हैं। इस महान कथाकार को 2009 में पद्म भूषण, 2002 में ज्ञानपीठ पुरस्कार और 1972 में साहित्य अकादमी का अनुवाद पुरस्कार प्रदान किया गया था। रूस ने 2011 में 'ऑर्डर ऑफ फ्रेंडशिप– से उन्हें नवाज़ा।

प्रसिद्ध रचनाकार रणवीर रांग्रा ने जयकांतन के महत्व को निम्नतया प्रदर्शित किया है–''देश के स्वतंत्र होने के पश्चात् तमिल साहित्य में जो कथाकार उभरकर आये, उनमें जयकांतन का महत्वपूर्ण स्थान है। 'अग्निप्रवेश' तथा 'युगसंधि' जैसी अपनी मौलिक अवधारणाओं वाली कहानियों के माध्यम से उन्हें प्रसिद्धि मिली। इनकी कहानियाँ उस पतनशील

सामाजिक व्यवस्था पर कुठाराघात करती थीं जो सदियों से धर्म तथा नैतिकता के नाम पर आम आदमी का दमन कर रही थीं, नैतिकता के ठेकेदार इन सबको चुपचाप देखते नहीं रह सकते थे। इसलिए उन्होंने एक होकर इनके लेखन की निंदा करनी शुरू कर दी। पर ऐसी आलोचनाओं से पूरी तरह अप्रभावित रहकर जयकांतन भ्रष्ट मूल्य प्रणाली पर लगातार आक्रमण करते रहे और जल्दी ही दलित पीड़ित जनता की आवाज बन गये।'' (अधूरे मनुष्य, पृ. 161, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, 1989, नई दिल्ली)

3-3 rfey dgkuh dh ijijk vkj t;dkUru

आप जानते हैं कि तमिल एक प्राचीन भाषा है। तमिलभाषी यह मानते हैं कि संस्कृत से भी यह प्राचीन है। संस्कृत में 'कथा' की परंपरा थी। तमिल कहानी की परंपरा भी अति प्राचीन है। परंतु वास्तव में 'कहानी' का जो स्वरूप है, 'कहानी' से आज जो द्योतित होता है, संपूर्ण भारतीय भाषाओं के संदर्भ में यह बात कही जा सकती है कि आधुनिक कहानी बीसवीं शताब्दी की देन है। अतः आप यह मान सकते हैं कि आधुनिक तमिल कहानी का उद्‌भव बीसवीं शती में हुआ था, यद्यपि यह तथ्य है कि अट्‌ठारहवीं शताब्दी में बीर मामुनिवर की 'परमार्थ कुरू कदै' और उन्नीसवीं शताब्दी में श्रीलंका के शन्दियाको की 'कथा चिंतामणि' आदि का उल्लेख मिलता है। दरअसल, व. वे. शु. अय्यर के कहानी लेखन से आधुनिक तमिल कहानी को नई राह मिली। उन्हें 'आधुनिक तमिल कहानी का जनक' भी कहा जाता है। उनके कहानी संग्रह का नाम है 'मंगैयरकरशियिन कादल'। व. वे. शु. अय्यर ने वीरता, प्रेम, करूणा आदि भावों से ओतप्रोत कहानियाँ लिखी हैं। इनकी कहानियों के नायक-नायिका आदर्शवादी रहे हैं। कुछ कहानियों का स्वर यथार्थवादी भी रहा है। इस दौर के अन्य कहानीकारों में तमिल के प्रसिद्ध कवि सुब्रह्मण्यम भारती का नाम भी बड़े आदर के साथ लिया जाता है। आप जानते हैं कि सुब्रह्मण्यम भारती ने राष्ट्रीयता से भरपूर कविताएँ लिखकर अपार ख्याति अर्जित की थी परंतु भारती जी की 'स्वर्णकुमारी', तिर्ण्डिय शास्त्री' जैसी कहानियों ने भी आधुनिक तमिल कहानी के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

तमिल कहानी को उन्नति के शिखर पर पहुँचाने वाले कहानीकारों में पुदुमैप्पित्रन्, वी. एस. रामैया, नारण दुरैकण्णन्, कु. प. राजगोपालन आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। बीसवीं शताब्दी के चौथे दशक में इन कहानीकारों का तमिल साहित्य में आगमन होता है। इन्होंने सामाजिक समस्याओं को आधार बनाकर तमाम कहानियाँ लिखीं। उपर्युक्त रचनाकारों में से पुदुमैप्पित्रन का नाम सर्वोपरि है। उन्होंने प्राचीन और नवीन विचारधाराओं में समन्वय स्थापित करना चाहा है। मिथकीय कथा का युगानुकूल विवेचन प्रभावशाली ढंग से किया है। उनकी कहानियों में सामाजिक जीवन के विविध पहलू भी अंकित हुए हैं। 'वब्लि', 'पोन्नकरम', 'कालनुम् किब्लवियुम– आदि आपकी प्रसिद्ध कहानियाँ हैं।

बी. एस. रामैया ने आदर्शवादी कहानियाँ लिखी हैं तो प्रेम, पारिवारिक जीवन, ऐतिहासिक घटनाओं को आधार बनाकर कु. प. राजगोपाल ने सरस व सरल शैली में अनेक कहानियाँ लिखी हैं। इस प्रकार आप स्पष्ट देख पाते हैं कि इस दौर तक आते-आते तमिल कहानियों में वैविध्य आ जाता है। कहानियों के स्वरूप में अनेक नवीन प्रयोग भी होने लगे थे। कल्कि, अण्णादुरै, करूणानिधि, शुद्धानंद भारती ने राजनीतिक विचारों के साथ-साथ बाल-विवाह, छुआछूत, आदि सामाजिक समस्याओं पर भी कहानियाँ लिखीं। धार्मिक भ्रष्टाचार, बाह्याचार, ढोंग, पाखंड आदि का विरोध करते हुए शुद्धानंद भारती ने महत्वपूर्ण कहानियाँ लिखी हैं। मसलन, उनकी कहानी 'कपट संयासी' कथाकार की सामाजिक जागरूकता और धार्मिक सचेतनशीलता का उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

इसके बाद के दौर में यानी स्वतंत्रता आंदोलन के अंतिम दशक में कहानीकारों ने देश की आर्थिक स्थिति पर ध्यान देते हुए कहानियाँ लिखीं। इनमें कहानीकार ने तत्कालीन समाज में दरिद्रों की मार्मिक स्थिति का जीवंत चित्रण किया है। उदाहरणस्वरूप, उनकी कहानियों का संग्रह है 'मुल्लैक्कोडियाल' जिसमें हास्य-व्यंग्य मिश्रित शैली में निर्धनों की शोचनीय आर्थिक दशा का वर्णन मिलता है।

प्राक्-स्वातंत्र्यकालीन तमिल कहानी जगत में एक अति चर्चित नाम है अखिलन्। पुरुष-स्त्री के संबंध, नारी-हृदय के चित्रण में अखिलन ने महत्वपूर्ण कहानियाँ लिखीं। उन्होंने प्रेम भावना से सम्बन्धित अनेक कहानियाँ प्रस्तुत की हैं। अरू रामनाथन्, तिल्ले बिल्लालन, टी. के. श्रीनिवासन्, प. कण्णन आदि रचनाकारों ने अखिलन की परंपरा को आगे बढ़ाया है।

1950 के आसपास तमिल कहानी का परिदृश्य परिवर्तित होने लगा। इस बदलते परिदृश्य और परिवर्तित सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों को सुंदर रामस्वामी, जयकांतन, ना. नार्थसारथी, जे. एम. हुसैन, कर्णनन्, राजम कृष्णन, आर चूड़ामणि, एस. लक्ष्मी सुब्रह्मण्यम आदि को अपनी सृजनधर्मिता में उकेरने का प्रयास किया है। सामाजिक यथार्थ के विविध पहलुओं को अंकित करने में भी इन कहानीकारों ने सफलता हासिल की। नारी-शिक्षा, नारी की सार्वजनिक क्षेत्रों में सहभागिता, परिवार नियोजन, राजनीतिक चहल-पहल, पारिवारिक संबंध आदि को अपनाकर तमिल कहानीकारों ने तमिल कहानी की दिशा बदल दी। ऐतिहासिक मनोविश्लेषणात्मक, जासूसी, बालसुलभ कहानियाँ आदि भी लिखी जाने लगीं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि तमिल कहानी-साहित्य अत्यंत समृद्ध है। एक ही कालखंड में कई प्रकार की कहानियाँ लिखी गईं। इससे मालूम होता है कि तमिल कहानी साहित्य में सर्वदा वैविध्य मौजूद रहा है। दण्डपाणि जयकांतन ने तमिल कहानी को उन्नति के चरम शिखर पर पहुँचाया। उसे गुणात्मक श्रेष्ठता प्रदान की। उनकी प्रारंम्भिक कहानियों में मार्क्सवाद का प्रभाव है तो परवर्ती कहानियों में फ्रायडवाद का। के. ए. जमुना ने जयकांतन की कहानियों के बारे में लिखा है–'' जयकांतन समाज के प्रत्येक वर्ग के व्यक्ति की परिस्थितियों, उसकी समस्याओं से परिचित थे। उन्होंने समाज के प्रायः सभी वर्ग के व्यक्तियों को अपनी कहानियों का पात्र बनाया है। उनकी कहानियों में सर्वत्र पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग दृष्टिगत होता है।'' स्वयं जयकांतन ने अपनी कहानियों के बारे में कहा है–''मेरी कहानियाँ खाली समय बिताने अथवा यों ही समय नष्ट करने का एक साधन नहीं हैं।'' इस कथन से साफ पता चलता है कि जयकांतन की कहानियाँ मनोविनोद के लिए नहीं लिखी गई हैं। 'टाइम पास' करने के लिए भी नहीं हैं। उनकी कहानियाँ पढ़कर पाठक के हृदय में उथल-पुथल होती है। पाठक सोचने के लिए विवश हो जाता है। जयकांतन की कहानियों का पाठक उद्वेलित होता है, आंदोलित भी। आइए, हम लोग 'ट्रेडिल' कहानी की संवेदना और उसके विविध संदर्भों को सामने लाने का प्रयास करें।

3-4 Nkis[kkus dk thou vkSj okrkoj.k

आपने 'ट्रेडिल' कहानी पढ़ने के बाद जरूर इस बात का अहसास किया होगा कि इसमें छापेखाने का जीवन चित्रित हुआ है। इस विषय पर चर्चा करने के पहले हम यह जान लें कि ट्रेडिल है क्या? दरअसल, ट्रेडिल वह मशीन है जिसे पाँव की सहायता से चलाया जाता है। संभवतः आपने छोटे शहर या कस्बे में यह मशीन देखी होगी। पाँव से चलाई जाने वाली इस मशीन से छपाई का काम होता है।

कहानी में वर्णित छापाखाना, छोटा-सा मुद्रणालय यानी प्रेस के बारे में आपने जो कुछ भी पढ़ा, उससे यह स्पष्ट हो गया होगा कि कहानीकार ने उसका फोटोग्राफिक वर्णन प्रस्तुत

किया है। मानों कहानीकार एक 'गाइड' बनकर उस प्रेस की छोटी-सी-छोटी चीज के बारे में आपको बता रहा हो। हालाँकि, कहानीकार प्रेस, सामग्री मशीन, छपकर आने से पहले की स्थितियों के बारे में भले आपको परिचित करा रहा हो, लेकिन उसका लक्ष्य कुछ और है। अति संक्षेप में कहें तो ट्रेडिल मशीन को क्रियाशील करनेवाले मजदूर के. विनायकमूर्ति के बारे में, उसकी जीवन-स्थितियों के बारे में संवेदनात्मक चित्रण करना ही कहानीकार का मूल लक्ष्य है। कहानीकार ने कहानी के प्रारंभ में छापाखाने के वातावरण को सजीव ढंग से प्रस्तुत किया है जिससे छापाखाने के जीवन से परिचित होने की भूमिका तैयार हो जाती है–

''ट्रिंग....ट्रिंग......ट्रिंग

–ट्रेडिल मशीन का इंक–ब्लेड घूम रहा है।

चर्..........चर्र..........चाक्.............

–इंक रोलर ऊपर–नीचे गतिशील है।

टँग.........टटक्!

–कागज़ पर इम्प्रेशन!

टटक्............टटक्.............टटक्................

'अंधेरी गुफा सरीखा' के माध्यम से प्रेस की जिंदगी के बारे में अनुमान किया जा सकता है। यहाँ प्रेस के मालिक हैं मुरूगेश मुदलियार और कर्मचारी अथवा मजदूर विनायकमूर्ति है। वह कंपोजिटर है, बाइंडर है, मशीनमैन भी। इसी से आप अंदाज़ा लगा सकते हैं कि उस पर काम का कितना बड़ा बोझा है। पूरे छापाखाने में अधिकांश समय वह अकेले काम पर जुटा रहता है। कागज़, मशीन, इंक, कार्ड, टाइप-सेटिंग आदि के बीच में पिछले बारह साल से जीवन व्यतीत कर रहा है। पेडल मारकर मशीन चलाता रहता है। इसी बीच उसे हर्निया हो जाता है। ऑपरेशन के बाद उसे विवाह ना करने की सलाह दी जाती है। एकाकी दु:खद जीवन उस 'अंधेरी गुफा' में बिताने के लिए विवश होता है। बीमारी, दर्द और अपमान को साथी बनाने के लिए लाचार होता है। के. विनायकमूर्ति के बहाने कहानीकार ने छापाखाने में काम करने वाले मजदूरों की शोचनीय जीवनस्थिति का मार्मिक चित्रण किया है।

3-5 ekfyd-deipkjh d lc/k dk yxko o ruko

औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप देशभर में मशीनें छा गईं। वैज्ञानिक साधन तेजी से विकसित हुए। इस संदर्भ में पूँजी ने अपना प्रभाव विस्तार किया। उसने अपनी सभ्यता ही विकसित कर ली। पूँजीवादी सभ्यता। इस सभ्यता ने एक नया वर्ग खड़ा कर दिया जो मजदूर वर्ग के नाम से जाना गया। पूँजी के अधिकारों ने श्रम को खरीदना शुरू किया। श्रम की खरीद को लेकर संघर्ष हुआ।

आपने ध्यान दिया होगा कि 'ट्रेडिल' शीर्षक कहानी में मालिक-कर्मचारी के संबंध में एक विलक्षणता है। इन दोनों के संबंध में लगाव है और तनाव भी। शोषण है तो अपनापन भी। ऐसा क्यों? दरअसल, साठ के दशक में पूँजी का प्रवेश हो रहा था। वह पूरी तरह से 'भारतीयता' को अपने कब्जे में नहीं कर पाई थी। थोड़ी-सी संवेदनशीलता ही सही, जीवित थी। आत्मीयता के कुछ क्षण अब भी शेष थे। इसलिए संबंधों के बीच एक लगाव मौजूद है। 'ट्रेडिल' कहानी के हवाले आप इसकी पुष्टि कर सकते हैं।

THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

प्रिंटिंग प्रेस के मालिक मुरूगेश मुदलियार का कर्मचारी है के. विनायकमूर्ति। बारह साल पहले उसने प्रिंटिंग प्रेस में कंपोजिटर के तौर पर योगदान दिया था। अब उसकी उम्र तीस साल की है। अब वह केवल अक्षर-योजन (कंपोजिंग) नहीं करता है, बाइण्डिंग का काम भी करता है। मशीन भी चलाता है। विनायकमूर्ति एक अति विश्वस्त कर्मचारी हैं। किसी इतवार को वह अपनी दादी के यहाँ गया हुआ था। उसने मालिक मुदलियार को सूचना दी कि दादी ने उसके लिए कोई लड़की देख रखी है। विनायकमूर्ति मालिक से सौ रुपये की पेशगी माँगता है तो मुदलियार मुदित भाव से मान भी लेता है। इसके पश्चात् जयकांतन कहानी में जो उल्लेख करते हैं उससे मुदलियार के हृदय में बची हुई संवेदनशीलता और पूँजी की संपूर्ण सत्ता के कब्जे से बचे रहने का प्रमाण मिलता है–

''बाहर निकलते हुए मुदलियार ने अपने–आपसे कहा–'पट्ठे की उम्र हो गयी..... जब हमारे पास आया अठारह साल का छोकरा था..... हमारे सिवा इसका अपना कौन है..... शादी में कोई कसर नहीं होनी चाहिए।'' अपने कर्मचारी के विवाह में कोई कसर न होने देने की इच्छा से यह भी सिद्ध होता है कि मुदलियार में इंसानियत जीवित है। अतः इसे आप संबंध में निहित लगाव कह सकते हैं। मालिक और कर्मचारी के संबंध में एक तनाव भी ''ट्रेडिल' कहानी में मौजूद है। आपको मालूम है कि विनायकमूर्ति का वेतन बीस रुपये है। लेकिन ''काम की भीड़ और मुदलियार के 'मूड' के मुताबिक चाय पीने या नास्ता करने के लिए समय-समय पर मिलने वाली फालतू आमदनी को जोड़ दें तो तनख्वाह तीस रूपये तक पहुँच जाए।'' यहाँ विनायकमूर्ति को कर्मचारी कहा गया है लेकिन उसके काम का जो शोषण हो रहा है तथा उसे जो दिन-रात एक करते हुए श्रम करना पड़ता है, इसके आधार पर विनायकमूर्ति को आप मजदूर भी कह सकते हैं। बीस साल का प्रेस है। बारह वर्षों से विनायकमूर्ति कर्मरत है। उसके श्रम के आधार पर मालिक ने एक छोटा-सा मकान बना लिया है। विनायकमूर्ति दाल-भात खाकर जीवित है।

मशीन में गड़बड़ी आती है तो पलभर के लिए मशीन बंद क्या हो गई, मुदलियार ने चिल्लाना शुरू कर दिया–''अबे, मशीन क्यों बंद कर दी? ग्राहक अभी आनेवाला ही है। समझे?'' 'अबे' मालिक की भाषा है। अपने वर्चस्व कायम करने की भाषा है। काम का दबाव यानी प्रेशर हमेशा नौकर पर डालता है। नौकर काम के बोझ से दबा हुआ रहता है।

एक दूसरा प्रसंग है जब विनायकमूर्ति को थोड़ा मजाक सूझता है तो मुदलियार ने चिल्लाना शुरू किया–''अबे, क्या चल रहा है! आजकल उल्टा-सीधा काम करने लग गया है, क्या बात है? अरे, किसने तुझे डिस्ट्रिब्यूट करने को कहा? ... बाहर जाते हुए मैं कौन-सा काम बताके गया और तू क्या काम कर रहा है। ....मैंने कहा था कार्ड का काम पूरा करने के बाद अभिनंदन-पत्र को मशीन पर चढ़ा ले, हाँ, वह बहुत जरूरी है!''

इसके बाद मुदलियार का हुक्म–''चाहे रात हो जाए, आज उसे पूरा करना ही है!'' इस प्रकार मालिक और मजदूर में एक तनाव जारी रहता है लेकिन, इसमें मजदूर या कर्मचारी का कोई विरोध नहीं है। संघर्ष भी नहीं है। लेकिन क्यों? ऐसा हो सकता है कि कहानीकार जयकांतन ने बिना विरोध प्रदर्शित कराये भी पूरा विरोध दिखाया है। कहानी के पाठक विनायकमूर्ति की दुःस्थितियों के साथ हो जाते हैं। ऐसा होना किसी विरोध से कम नहीं माना जा सकता है। यह भी हो सकता है कि विनायकमूर्ति की लाचारी और विवशता को प्रदर्शित करना लेखक का उद्देश्य हो। बावजूद इस तनाव के लगाव भी है। भले ही यह लगाव मुदलियार के हृदय में हो। पसीने से तर–ब–तर विनायक को देखकर उसका पैर पेडल पर ताबड़ तोड़ चलते देखकर, फुर्ति से काम करते हुए विनायकमूर्ति को देखकर मुदलियार ने मन–ही–मन कहा–'बेचारा बैल की तरह काम करता है।'' फिर ''ले, ये पैसे रात के खाने के लिए रख ले।''

अतः कहा जा सकता है कि आलोच्य कहानी में मालिक कर्मचारी का संबंध एक खास प्रकार है जहाँ लगाव है तो तनाव भी।

3-6 etnj dk thou vkj liuk dk VVuk

जयकांतन ने 'ट्रेडिल' के कथा-नायक के जीवन का सूक्ष्म अध्ययन कर उसका चित्रण किया है। पीड़ित, दलित, शोषित, निर्धन, मजदूर, जीवन समस्याओं के अंकन के साथ-साथ उनके हृदय की गहराई में उतरकर जैसा चि़त्रण जयकांतन ने किया है वैसा किसी भी तमिल कहानीकार नहीं कर पाया है। इस संदर्भ में डॉ. के. ए. जमुना ने लिखा है–''समाज द्वारा तिरस्कृत, अपमानित एवं उपेक्षित लोगों को उन्होंने सहानुभूति की दृष्टि से देखा और उनके जीवन का चित्रण अपनी कहानियों में किया। टूटी-फूटी झोपड़ियों में, प्लेटफार्म पर जीवन बिताते हुए, मुट्ठी भर अन्न के लिए तड़प-तड़पकर प्राण देनेवाले निर्धन लोगों के दुख-दर्द को जितनी सजीवता से जयकांतन ने प्रस्तुत किया है वैसा दूसरे किसी तमिल कहानीकार ने नहीं किया।'' (अधूरे मनुष्य, पृ.16)

इसके पहले आपने पढ़ा कि विनायकमूर्ति अपने मालिक के 'मूड' पर जीवित रहता है। कभी मुदलियार प्रसन्न होकर अठन्नी दे देते हैं तो कभी 'मूड' ठीक रहे तो चाय के लिए चवन्नी देते हैं। भोजन है दाल-भात। अनवरत काम। निर्धन मजदूर के जीवन में घोर निस्संगता। वह कहीं न कहीं अकेलेपन का शिकार भी है। वह अचानक बीमारग्रस्त हो जाता है। भयानक दर्द उठता है पेट में। अंतड़ियाँ मरोड़ने लगती हैं। हर्निया का आपरेशन हुआ सरकारी अस्पताल में। उसके जीवन के बारे में जयकांतन ने तीन शब्द पेश किये हैं। इन्हीं तीन शब्दों में मजदूर का जीवन पूर्णतया अभिव्यंजित हो उठा है–''बीमारी.....दर्द..... अपमान!''

मज़दूर भी मनुष्य होते हैं। उनके भी कुछ सपने होते हैं। उन सपनों को पूरा करने के लिए वे जीवित रहते हैं। दर्द सहते हैं। अपमान झेलते रहते हैं। उनके सपनों का संबंध न तो अकूत पूँजी के स्वामी बनने से है और न ही राजाधिराज या सम्राट की ऊँची कुर्सी से होता है। सपने छोटे-छोटे होते हैं। आजीविका से संबंधित अथवा जीवन की आवश्यकता से जुड़े होते हैं वे सपने। विनायकमूर्ति का भी एक सपना थाः छोटा-सा। विवाह करने का सपना। घर बसाने का सपना। जैसे निर्धनों का कोई सपना कभी साकार नहीं हो पाता है। वैसे विनायकमूर्ति का सपना भी चूर-चूर हो जाता है। बिखर जाता है। टूट जाता है। जब आपरेशन के बाद महीने भर अस्पताल में बिताने के बाद छुट्टी मिलती है। डॉक्टर की सलाह सुनकर वह ऐसा महसूस करता है मानों उसे ''दिल के अंदर चुपके से एक बम बनकर फूट पड़ा'। डॉक्टर की हिदायत थी ''तुम्हें शादी नहीं करनी चाहिए। अव्वल तो ऐसी इच्छा उठेगी ही नहीं, फिर भी दूसरों के दबाब में आकर कहीं शादी न कर लेना''। लगभग पिछले बारह वर्षों से सजाया-सँवारा गया सपना मिट्टी में मिल जाता है। तीस बरस के नौजवान विनायकमूर्ति के लिए इसके बड़ा वज्रपात भला और क्या हो सकता है। काम पर लौटता है तो मुदलियार उसका वेतन दस रुपये बढ़ा देता है। विवाह के लिए पेशगी के तौर पर सौ रुपये देने का ऐलान भी कर देता है। कैसी विडंबना है विनायकमूर्ति के जीवन में कि वह गुप्त स्थान के घाव को दिखा भी नहीं पा रहा है और सहन भी नहीं कर पा रहा है।

दरअसल, विनायकमूर्ति का सपना टूटना यानी मजदूर वर्ग का स्वप्नभंग है। विनायकमूर्ति के स्थान पर किसी भी कर्मचारी या मजदूर का नाम रख लें तो कोई फर्क नहीं पड़ता है। प्रसंगतया, यह उल्लेख किया जा सकता है कि आजादी के बाद भारतीय मजदूर वर्ग और निराश्रित लोगों की करुण चीत्कार जयकांतन की अनेंक कहानियों में सुनाई पड़ती है। यदि

कभी आपको अवसर मिले तो आप 'ओवर टाइम', 'दांपत्यम', 'देवन बरुवारा' जैसी जयकांतन की कहानियों को अवश्य पढ़ लें। 'ओवर टाइम' शीर्षक कहानी का कथा-नायक एलुमल्लै है। वह एक गरीब कंपोजिटर है। उसका सपना है कि वह अपनी बेटी का विवाह करा सके। इसलिए वह धन जुटाने के लिए चिंतित रहता है, पीड़ित भी। विनायकमूर्ति की तरह दिन-रात काम करते हुए बीमार हो जाता है। इस कहानी में एलुमल्लै प्रेस में ही दम तोड़ देता है। 'ट्रेडिल' कहानी 'ओवर टाइम' के आगे की कहानी है। यह इसलिए कि विनायकमूर्ति का सपना चूर-चूर हो जाता है। पर वह अदम्य जिजीविषा प्रकट करता है। जीवन यथार्थ को झुठलाने के प्रयास में वह 'वेस्ट शीट' ही सही मशीन रोककर कैसों के बीच में तह करके रखे हुए कागज निकालकर देखता है–''के. विनायकमूर्ति और सौभाग्यवती अनसूया का शुभ विवाह'' जीवन में अभावों से जूझने के बावजूद वह पराजित होना नहीं चाहता है। किसी कार्ड में 'चिरंजीव श्रीधर' छपा हुआ था तो उसने उन सात अक्षरों के बदले अपना नाम सेट कर लिया के. विनायकमूर्ति। इस भारारत से उसके संघर्षमय जीवन, दुःख भरी जिंदगी में पल भर की मुस्कान छा जाती है जो आनेवाले दुःख के पहाड़ को लाँघने के लिए पर्याप्त होती है। इस प्रकार प्रतिकूल से प्रतिकूल परिस्थितियों में भी जीवन सुधारस का संधान कर लेना मजदूर वर्ग की सबसे बड़ी विशेषता है। ''सांसारिक जीवन को सुखमय बनाने के लिए एक जीवन-साथी का होना बहुत आवश्यक है।'' वाले वाक्य में 'सुखमय' के स्थान पर 'दुखमय' छप गया था। इस पर विनायक को एकाएक हँसी आ गयी; ठहाका मारकर एक बार हँस पड़ा। तमाम कष्ट झेलते हुए, अभावों में जीते हुए, असुविधाओं का सामना करते हुए भी विनायकमूर्ति का जीने का ढंग निराला है। अद्भुत है। यह विशिष्टता मजदूर वर्ग की है जिसे कहानीकार ने अत्यंत सहज तथा स्वाभाविक ढंग से उकेरने का सफल प्रयास किया है। इसलिए यह कहानी बेजोड़ है और अनन्य भी। यह कहानी हमें निराश नहीं करती है, आशावान बनाती है। यह कहानी हमें यह भी बताती है कि विपरीत परिस्थितियों में भी जीवन को अर्थप्रद बनाया जा सकता है। उसे नई अर्थवत्ता प्रदान की जा सकती है। जीवन के मूलमंत्र का प्रचार किया जा सकता है। कटु-तिक्त रस का पान करते हुए मानवता की रक्षा की जा सकती है। जीवन की एकरसता या मॉनोटोमी को भी अस्वीकारा जा सकता है। यांत्रिक जीवन की असह्य वेदना को सहन करने मनुष्यता को बचाए रखने के लिए प्रयास किया जा सकता है। टूटते, बिखरते, चूर-चूर होते सपनों के समय में भी जीवन-रस का अन्वेषण किया जा सकता है।

3-7 eu"; l e'khu cu tku dh =kIn

आपने अज्ञेय जी की प्रसिद्ध कहानी 'रोज' पढ़ी होगी। इस कहानी में अज्ञेय जी ने कहानी की नायिका मालती की अंतर्द्वन्द्वग्रस्त मानसिक स्थिति, शारीरिक तथ मानसिक जड़ता आदि के कुशल चित्रण के साथ-साथ घंटा-ध्वनि गिनने और गिनाने में मालती के जीवन का अंकन किया है। उसकी एकरसता और उसकी त्रासदी का मार्मिक वर्णन हुआ है। उसका जीवन ''अपना रोज की नियत गति से बहा जा रहा था और एक चंद्रमा की चंद्रिका के लिए, एक संसार का सौंदर्य के लिए रूकने को तैयार नहीं था।'' डॉक्टर की पत्नी, एकमात्र पुत्र की माँ बनकर भी मालती यंत्रवत् जीवन व्यतीत कर रही थी। लेकिन, 'ट्रेडिल' कहानी के विनायकमूर्ति के माध्यम से जयकांतन ने अज्ञेय से भी गंभीर चिंता की ओर संकेत किया है। मनुष्य से मशीन बन जाने की त्रासदी की ओर संकेत किया है। कहानी का प्रारंभ ट्रेडिल मशीन की गतिशीलता से होता है। प्रेस में एक ट्रेडिल मशीन थी। कहानी का अंतिम वाक्य है–''हाँ, दोनों ट्रेडिल मशीनें गतिशील हो गयीं।'' दूसरी ट्रेडिल मशीन कहाँ से आयी? खरीदी तो न गई थीं। के. विनायकमूर्ति ही दूसरी ट्रेडिल मशीन के रूप में गतिशील है। यह अंतिम वाक्य पाठक की हृद्तंत्रियों को झकझोर कर रख देता है। क्या आप बता सकते

हैं कि ऐसा क्यों हुआ? मनुष्य यंत्र में तब्दील हो गया। प्रेम, करुणा, सहानुभूति, सहृदयता, संवेदना आदि मानवीय भावों का आगार है मनुष्य जबकि मशीन निर्जीव हुआ करती है। न तो उसकी कोई इच्छा होती है और न ही अभीप्सा। उसे जैसे चलाना चाहें चला सकते हैं। ऐसी ही स्थिति कहानी के नायक की भी हो गई है। मुदलियार की आज्ञा के अनुसार चलता रहता है।

हाँ, इस सवाल पर थोड़ा-सा विचार कर लेना चाहिए कि मनुष्य मशीन कैसे बन जाता है? आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के विकास ने मानव को ढेरों साधन उपलब्ध कराये। मनुष्य की सुख-सुविधा के लिए इन साधनों की खोज हुई है। लेकिन यह किसे मालूम था कि उक्त साधन मनुष्य को अपने कब्जे में कर लेंगे, अपना दास बना लेंगे? मनुष्यता को लील लेंगे? मूल बात यह है कि पूँजीवादी सभ्यता में सर्वोपरि होती है पूँजी। उसके समक्ष सारे आत्मीय संबंध और मानवीय गुण बौने तथा ठिंगने प्रतीत होते हैं। मुनाफा कमाना यानी पूँजी की सर्वग्रासी शक्ति से मानव का मशीन में तब्दील हो जाने का आशय है एक भाव-प्रेम रहित दुनिया की रचना जहाँ इंसानियत केवल शब्दकोश में पाई जाती है। ऐसे में सवाल उठता है कि यह 'उन्नति' अथवा 'विकास' किसके लिए है? मनुष्य के लिए या फिर रोबोट जैसे यंत्रमानव के लिए? आज के संदर्भ में यह कहानी अधिक प्रासंगिक प्रतीत होती है। भूमंडलीकरण के दौर में पूँजी के उत्पात से सबसे बड़ा संकट मनुष्यता के सामने मँडरा रहा है। इस दृष्टि से भी 'ट्रेडिल– की अर्थवत्ता स्वयंसिद्ध है।

आलोच्य कहानी में एक दूसरा मार्मिक प्रसंग चित्रित हुआ है। महीने भर के बाद अस्पताल से छुट्टी पाकर विनायक काम पर लौटता है तो कहानीकार ने वर्णन किया है–''अंधेरी गुफा सरीखे छापाखाने में घुसकर उसने ट्रेडिल देखी। केस देखा और स्टिक देखा–जिनसे उसका एक महीने का वियोग हो गया था। पता नहीं, क्या सूझा या उसे..... उसने ट्रेडिल को गले लगाकर साँस भरी।'' विनायक ट्रेडिल को वैसे भी लगा रहा है जैसे किसी आत्मीय को आलिंगन में लिया जाता है। इतनी बड़ी दुनिया में ट्रेडिल ही उसका संगी, साथी, सबकुछ है। विनायक की दुनिया ट्रेडिल की दुनिया तक सीमित है। विनायक के अंतर्मन की परत–दर–परत को कहानीकार ने उन्मुक्त किया है। चंद शब्दों में बहुत कुछ कहने की कला है–'अमित अरथ आखर थोरे'।

3-8 lkjk'k

डी. जयकांतन द्वारा लिखित 'ट्रेडिल' कहानी के इस पाठ का आपने ध्यानपूर्वक अध्ययन किया है। आपने अध्ययन के दौरान यह जरूर महसूस किया होगा कि जयकांतन इस कहानी के माध्यम से भारतीय पूँजीवादी व्यवस्था से मजदूर जीवन की विभिन्न प्रवृत्तियों को बड़ी कलात्मकता के साथ हमारे समक्ष प्रस्तुत करते हैं। यह कहानी मजदूर वर्ग या कर्मचारी वर्ग की शोचनीय स्थितियों को रेखांकित करती ही है, मालिक-कर्मचारी के संबंध के लगाव और तनाव को भी उजागर करती है तथा वर्ग-चेतना का भी परिचय प्रदान करती है। के. विनायकमूर्ति कंपोजिटर–कम–बाइंडर–कम–मशीन मैन की पूरी जिम्मेदारी निभाता है। उसके जीवन की वास्तविकताओं को भी अत्यंत संवेदनशीलता के साथ कहानीकार ने अंकित किया है। बिनायकमूर्ति के टूटते–बिखरते सपने से भी आप व्यथित हुए होंगे। सर्वोपरि 'ट्रेडिल' कहानी की मूल संवेदना–मानव–मूल्यों का क्षरण होना, मनुष्य का मशीन में तब्दील हो जाना–से भी आप भली-भाँति परिचित हो गये होंगे। शोषण से मुक्त एक वर्गहीन समाज निर्माण की आकांक्षा के साथ-साथ मनुष्य जीवन की अदम्य जिजीविषा को भी हमें समझने में यह कहानी सहायता करती है।

THE PEOPLE'S UNIVERSITY

मनुष्य अपने सपनों को बचा सके तो यह बहुत बड़ी उपलब्धि मानी जाएगी। सपने बचेंगे तो मनुष्य मनुष्य बना रहेगा। मानवता बची रहेगी। मानव-मूल्यों की रक्षा हो पायेगी। के. विनायकमूर्ति एक 'टाइप' चरित्र है। उसके माध्यम से मजदूर/कर्मचारी के जीवन और अंतर्मन की विविध स्थितियों को भी इस कहानी में बड़ी ही मार्मिकता के साथ प्रस्तुत किया गया है।

3-9 vH;kl

1) 'ट्रेडिल' कहानी के आधार पर छापाखाने के जीवन और वातावरण का सविस्तार वर्णन कीजिए।

2) ''जयकांतन ने मजदूर के कष्टप्रद जीवन और अंतर्मन का बारीकी से चित्रण किया है''– इस कथन की समीक्षा कीजिए।

3) जयकांतन ने पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के दुष्परिणामों तथा अमानवीयता को उजागर किया है– इस कथन की आलोचना कीजिए।

4) तमिल कहानी के विकास में जयकांतन के अवदान पर विचार कीजिए।

5) 'ट्रेडिल' कहानी में चित्रित मालिक-कर्मचारी के संबंध पर एक निबंध लिखिए।

इकाई 4 प्राणधारा : विश्ले"ाण और मूल्यांकन

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 कालीपट्नम रामाराव की कहानियों में सामाजिक दृष्टि

4.3 कालीपट्नम रामाराव की कहानी "प्राणधारा " : पाठबोध और प्रक्रिया

4.4 सारांश

4.5 अभ्यास

4.0 उद्देश्य

इस इकाई में तेलुगु के प्रगतिशील आंदोलन के एक महत्वपूर्ण लेखक के रूप में कालीपट्नम रामाराव के कथा साहित्य से परिचय प्राप्त करेंगे। इनकी एक सशक्त कहानी "प्राणधारा" पाठ हेतु आप के सामने है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आपः

- कालीपट्नम रामाराव के कथा साहित्य से परिचित हो सकेंगे/सकेंगी।
- "प्राणधारा" कहानी के माध्यम से सामाजिक विषमता के कारण साधनहीन लोगों के जीवन की कठिनाइयों और संपन्न वर्ग की आत्मरत और स्वार्थी मनोवृत्ति को गहराई से समझ सकेंगे/सकेंगी।
- "प्राणधारा" में अभिव्यक्त कालीपट्नम रामाराव की सामाजिक दृष्टि का विवेचन कर सकेंगे/सकेंगी।
- सुविधाभोगी वर्ग और साधनहीन वर्ग के बीच होने वाले संघर्ष को दो वर्गों के बीच के संघर्ष के रूप में चित्रित कर सकेंगे/सकेंगी।

4.1 प्रस्तावना

"का रा" मास्टर आर्थात कहानियों के मास्टर " के नाम से प्रसिद्ध कालीपट्नम रामाराव तेलुगु के वरिष्ठ कथाकार हैं। 1924 में इनका जन्म श्रीकाकुलम में एक सामान्य आर्थिक स्थिति और संतान-संकुल ब्राह्मण परिवार में हुआ था। अनेक कठिनाईयों से लड़ते हुए इन्होंने मैट्रिक तक की शिक्षा पूरी की। फिर कई छोटी-छोटी नौकरियों के बाद यह सोचकर कि अध्ययन-लेखन और ईमानदार आजीविका की दृष्टि से अध्यापन उपयुक्त है, ये विशाखापट्नम के सेण्ट ऐंटनी स्कूल में सेकेंडरी ग्रेड अध्यापक हो गए थे और लंबी अवधि के बाद वहीं से सेनानिवृत्त हुए। विशाखापट्नम में रा.वि.शास्त्री जैसे तेलुगु के प्रतिष्ठित प्रगतिवादी लेखकों और मार्क्सवादी विचारकों के संपर्क में रहते हुए साहित्य के उद्देश्य तथा समाज के स्वरूप को समझने का इन्होंने प्रयत्न किया समकालीन साहित्यिक आंदोलनों में भी वे सदा सक्रिय रहे। 1943 में "प्लेटफर्म " नामक एक पोस्टकार्ड साइज की कहानी से आरंभ होकर 1992 में प्रकाशित "संकल्प " नामक कहानी तक कभी चलती कभी रुकती अपनी साहित्य यात्रा में इन्होंने केवल 30-35 कहानियाँ ही लिखीं। कहानी के प्रति अपार प्रेम के कारण तेलुगु में आज तक प्रकाशित समस्त कथा साहित्य को सुरक्षित रखने तथा अध्येताओं को एक ही स्थान पर उसे उपलब्ध कराने के उद्देश्य से 1998 में श्रीकाकुलम में

"कथा निलयम् " नामक एक संस्था की स्थापना करके ये आजकल तन-मन-धन से उस संस्था के पोषण में लगे हुए हैं।

4.2 कालीपट्नम रामाराव की कहानियों में सामाजिक दृ"टि

सन् 1936 में लखनऊ में आयोजित अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ के अधिवेशन के घोषणापत्र के अनुसार समस्त भारत में प्रगतिशील लेखक संघ की प्रांतीय शाखाओं की स्थापना की जाने लगी। इसी क्रम में आंध्र प्रदेश में तेलुगु के प्रगतिशील कवियों ने "अभ्युदय रचयितल संघम् " की स्थापना की। संक्षेप में इसे "अरसम् " भी कहा जाता है, "अरसम् " का प्रथम अधिवेशन 13,14 फरवरी, 1943 में तेनाली में हुआ, तेलुगु के प्रगतिशील रचनाकार तापी धर्मा राव ने इस अधिवेशन की अध्यक्षता की "अरसम् " के लेखकों का मूल उद्देश्य वही है, जो हिन्दी के प्रगतिशील लेखकों का है। इन लेखकों का उद्देश्य सामाजिक विषमता के विरुद्ध संघर्ष करना है। "अरसम् " का घोषणापत्र भारती की ज्वलंत समस्याओं जैसे - गरीबी, शोषण, उत्पीड़न, सामाजिक विषमता और भेदभाव आदि के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए आवाज बुलंद करता है। "अरसम् " ने हाल ही में अपनी स्थापना के 60 वर्ष पूरे कर लिए हैं। तेलुगु के प्रगतिवादी लेखकों में श्री श्री. कोडवटिगंटि कुतुंब राव, दाशरथी, तापी धर्मा राव, रावि शास्त्री, चासो, कालीपट्नम रामाराव आदि हैं।

मार्क्सवादी दर्शन से प्रभावित रामाराव साहित्य में सामाजिक यथार्थ के समर्थक हैं। साहित्य द्वारा मानव मूल्यों की स्थापना करने के लिए पुरानी शोषक-उत्पीड़क, सुविधाभोगी और स्वार्थी शक्तियों से संघर्ष करती हुई नई सामाजिक शक्तियों का ही चित्रण होना चाहिए, ऐसा वे मानते हैं। इसलिए इनकी कहानियों की सब से बड़ी विशेषता सामाजिक असमानता और शोषण की पृष्ठभूमि में समाज के सबसे निचले तबके के जीवन में निहित यातना और संघर्ष और उसके भौतिक कारणों का स्पष्ट चित्रण है। जिन तथ्यों से अवगत न होने से हम जीवन और समाज की परिस्थितियों से समझौता करके चलते हैं, उन तथ्यों को ये कहानियाँ हमारे सामने खोलती हैं और हमें उन स्थितियों को बदलने की प्रेरणा देती हैं।

इनकी आरंभिक कहानियां, यानी 1955 से पहले की अधिकांश कहानियां मध्यवर्ग के ब्राह्मण परिवारों की कहानियाँ हैं। नौ साल की चुप्पी के बाद 1964 से लेकर 1972 तक लिखी सोलह कहानियाँ मुख्य रूप से समाज के निचले तबके और प्रायः छोटी जाति के श्रमजीवी वर्ग से संबद्ध हैं। इन कहानियों में चित्रित मूल समस्या उस वर्ग की भौतिक आवश्यकताओं की विकट अपूर्ति और शोषण की है, सामान्य जन द्वारा अपनी स्थिति की बेहतरी के लिए किया जाने वाला संघर्ष है। वे मानते हैं कि आज देश में समाज के सबसे निचले स्तर पर रह रहे लोगों को समाजिक सुरक्षा प्राप्त नहीं है। कहा जा सकता है कि व्यक्तिगत समस्याओं से आगे बढ़कर पारिवारिक समस्याओं से होते हुए ये सामाजिक समस्याओं तक पहुँचे हैं। जन को छोड़कर व्यक्तियों के बारे में लिखना उनको अच्छा नहीं लगता।

किसी भी समाज के आर्थिक ढाँचे का उस समाज के सदस्यों पर, उनकी मनोवृत्तियों पर किस प्रकार का प्रभाव पड़ता है, यह रामाराव की कहानियों में स्पष्ट देखा जा सकता है। इनका विचार है कि, "अपने चारों तरफ के समाज को समझने के लिए मनुष्य में केवल निरीक्षण की शक्ति ही पर्याप्त नहीं होती। उसमें सामान्य जन के प्रति अपार प्रेम और पीड़ा के प्रति इकहरी सहानुभूति का होना भी आवश्यक है। " उनकी यह भी मान्यता है कि लेखक हो, कलाकार हो या बुद्धिजीवी सभी मेहनतकश लोगों के ऋणी हैं, उन लोगों की रचनाएँ हों, कलारूप हों, या उनका ज्ञान, ये सब जनता के लिए, समाज की प्रगति के लिए

काम आने चाहिए, इसी को ये समाज के प्रति प्रतिबद्धता कहते हैं, वे मानते हैं कि ऐसी प्रतिबद्धता के साथ लिखने पर ही लेखक समाज के ऋण से मुक्त हो सकता है। रामाराव की प्रतिबद्धता आरोपित नहीं है। संस्कारगत है। वे दिखावे के लिए ऐसी प्रतिबद्धता का आवरण नहीं ओढ़ते, अपितु हर उस संघर्ष को समर्थन और सहानुभूति देते हैं, जो शोषण, उत्पीड़न और सामाजिक विषमता पर चोट करता है। ऋणग्रस्तता, अंधविश्वास, व्यभिचार, अवैध यौन संबंध जैसे विषयों के बारे में जनता में बद्धमूल विचारों के प्रतिकूल लेखक का सोचना और पाठक को सोचने के लिए प्रेरित करना साहस ही कहा जाएगा। जब तक पीड़ित वर्ग के प्रति अपार प्रेम नहीं होगा तब तक यह संभव नहीं होगा।

महान रचनाएँ केवल आह्लाद ही नहीं देतीं। वे हमें रोककर प्रश्न करती हैं, झकझोरती हैं, हमारे अंदर क्षोभ पैदा करती हैं, हमें आगे बढ़ाती हैं। इस प्रकार का क्रांतिकारी क्षोभ उत्पन्न करने वाले प्रभावी लेखकों में रामाराव एक हैं, लेकिन यह क्षोभ पैदा करने का काम ये धीरे-धीरे करते हैं, क्यों कि रामाराव अपने आवेश को छिपाकर पाठक में आवेश पैदा करने वाले कथा शिल्पी हैं। वे एक साधक कलाकार की तरह, स्नेही और विनयी मित्र की तरह हमें दिखाई देते हैं। रामाराव ने प्रेमचंद की ही तरह साहित्य को मनबहलाव के साधन से ऊपर उठाकर जीवन की समस्याओं पर विचार करने और उन्हें हल करने का मध्यम बनाया है। साहित्य की इस भूमिका को रेखांकित करते हुए प्रेमचंद ने कहा है, "जिस साहित्य से हमारी सुरुचि न जगे, आध्यात्मिक और मानिसक तृप्ति न मिले, हम में शक्ति और गति पैदा न हो, हमारा सौन्दर्य प्रेम जागृत न हो, – जो हम में सच्चा संकल्प और कठिनाइयों पर विजय पाने की सच्ची दृढ़ता उत्पन्न न करें, वह आज हमारे लिए बेकार है, वह साहित्य कहलाने का अधिकारी नहीं है।" प्रेमचंद की ही तरह रामाराव भी साहित्य का सामाजिक उपयोगिता के प्रबल आग्रगी हैं। सामाजिक दृष्टिविहीन रचना को वे श्रेष्ठ नहीं मानते ...जीवन और साहित्य के बीच की सीमारेखा की वे परवाह नहीं करते आकर्षक रूप देने के लिए अपने भावों को किसी आवरण में छिपाकर लिखाना इनकी प्रवृत्ति के विरुद्ध है। जो सोचा, जिस पर विश्वास किया, केवल वही लिखना इनकी प्रवृत्ति में है। यही इनके साहित्य को अपूर्व सुंदरता प्रदान करता है। इनकी यह व्यावहारिक शैली अनेक तेलुगु लेखकों के लिए प्रेरणाप्रद रही है। इनसे प्रेरणा लेकर अनेक तेलुगु लेखक प्रगतिवादी रचनाकारों के रूप में उभरे हैं। जिस तरह हम राजनीति में प्रजातंत्र के हामी हैं, उसी तरह रामाराव कहानी के स्वरूप में प्रजातंत्र के हामी हैं। शायद इसी कारण इनकी बड़ी कहानियों में एक-दो पात्रों की केन्द्रीयता नहीं रहती। इन कहानियों में अनेक पात्र होते हैं। लेकिन कोई नायक नहीं होता। रामाराव व्यक्ति विशेष की कहानियाँ न लिखकर किसी सामाजिक परिस्थिति या व्यवस्था का स्वरूप जैसे व्यापक सरोकारों की कहानियाँ लिखना पसंद करते हैं। या यों कह सकते हैं कि इनकी कहानियों के वृत्त में परिधि उतनी ही महत्वपूर्ण होती है, जितना कि केन्द्र । इसलिए उनकी कहानियों में जीवन का कैन्वस बड़ा प्रतीत होता है और उनकी कहानियां प्रायः लंबी होती हैं। रामाराव की कहानियों की ये विशेषताएं हिन्दी के पाठकों को फणीश्वरनाथ रेणु की याद दिला सकती हैं। रेणु की ही भांति रामाराव भी आम जनता के प्रति प्रतिबद्धता व्यक्त करते हैं। उनके कथा रूप में श्रीकाकुलम के सामाजिक जीवन की आंचलिक पहचान स्पष्ट दिखाई पड़ती है। रेणु की भांति ही रामाराव अभागे गांवों और शहरों की बात कहते हैं, लेकिन दोनों में एक अंतर भी है। रेणु की कला या वैचारिकता में किसी प्रकार का कोई अंतिम फैसला या निर्णय जैसी बात नहीं होती। रेणु का लेखक अपनी रचनाओं में छिपा रहता है, रचनाओं के समापन और निष्कर्ष तक में रेणु की विचारधारा मुखर नहीं हो पाती। वे जीवन को उसके पूरे खुलेपन के साथ हमारे आगे प्रस्तुत कर देते हैं। इधर रामाराव अपने समस्त धैर्य और आवेशहीनता के बावजूद उनका लेखक चित्रित जीवन में हस्तक्षेप करना चाहता है। यह बात उनकी रचनाओं में उभरकर आती है। इनको एक विचार विशेष के सहारे सामाजिक जीवन

में बदलाव की ओर जाना पसंद है। इसी कारण पूंजीपति, जमींदार, बड़े अधिकारी, विधायक, मंत्री जैसे पात्रों को उनकी सहानुभूति प्राप्त नहीं है। उनके अनुसार एक सामाजिक दृष्टि के बगैर कोई महान रचना नहीं कर सकता और किसी रचना को महान उसका विषय बनाता है, न कि उसकी शैली, उसका शिल्प आदि। वे अपने को जन्मजात कथाकार नहीं मानते, कहते है, "कहानी के बारे में, कहानी के लेखन के बारे में जानने के लिए मुझे बहुत समय लगा है। "

4.3 कालीपट्नम रामाराव की कहानी "प्राणधारा": पाठबोध और प्रक्रिया

अंग्रेजी के प्रसिद्ध नाटककार बेर्टांड रस्सेल ने कहा है, "संपत्ति की असमानता ने भूख के बगैर प्रचुर भोजन और भोजन के बगैर भूख की विड़ंबना की सृष्टि की है, "इस उक्ति को समाज के अन्य संसाधनों पर लागू करके कह सकते हैं कि इन संसाधनों पर थोड़े से लोगों ने अधिकार कर लिया है और दूसरे लोगों को उनसे वंचित कर दिया है। समस्त प्राणियों के जीवन की प्राथमिक आवश्यकताएं तीन हैं — हवा, पानी और आहार, "प्राणधारा" कहानी पानी के असम वितरण की समस्या को लेकर लिखी गई कहानी है। यहाँ पाली को हम समस्त सामाजिक संसाधनों का प्रतिनिधि मानकर आहार, आवास, चिकित्सा, शिक्षा, आदि अनेक वस्तुओं की असम वितरण की समस्या पर विचार कर सकते हैं।

कहने को कहा जाता है कि जल के बिना मछली तड़पती है। लेकिन संसार में शायद ही ऐसा कोई प्राणी हो, जो जल के बिना न तड़पता हो, जल को जो जीवन कहा गया है, उसकी सार्थकता को कोई भी इनकार नहीं कर सकता। पानी ही सारी सभ्यता और सौभाग्य का स्रोत है। जहाँ पानी नहीं होता, या कम होता है, वहाँ सभ्यता का विकास नहीं होता, लोग संपन्न नहीं होते। उन लोगों की सारी बुद्धि, सारा समय और श्रम अपने लिए और अपने पशुओं के लिए पानी जुटाने में ही लग जाते हैं, जीवन के उन्नत प्रयासों और उपलब्धियों की ओर ध्यान देने का उन लोगों के पास न समय होता है, न ऊर्जा ही होती है। रेगिस्तान में रहने वालों का जीवन इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है। वैसे रेगिस्तान बनते भी पानी या वर्षा के अभाव में ही है। पृथ्वी पर उपलब्ध कुल पानी का 97 प्रतिशत या उससे अधिक समुद्र का पानी है जो प्रत्यक्ष रूप से उपयोग में नहीं लाया जा सकता। दो से अधिक प्रतिशत पानी बर्फ के रूप में है। बचे एक प्रतिशत से भी कम पानी ही प्राणियों के काम आ सकता है, यानी पेय जल केवल इतना ही है। अब उस पेय जल का संकट बहुत बढ़ गया है। आबादी के बढ़ने और अन्यान्य वास्तविकताओं के कारण उसका उपयोग बहुत बढ़ जाने से एक ओर वह अपर्याप्त हो गया है, तो दूसरी ओर वह प्रदूषित भी बहुत हो गया है। इस कारण भविष्यविद् यह भविष्यवाणी कर रहे हैं कि भारत में अनेक राज्य नदियों के पानी को लेकर अनेक विवादों में जकड़े हुए हैं और उनके विवाद न्यायालयों में विचारार्थ प्रस्तुत हुए हैं। पानी की समस्या नहीं सुलझी, तो देश आर्थिक विपन्नता के गर्त में आएगा और लोगों में पारस्परिक वैमनस्य बढ़ेगा।

देश में ऐसे इलाके हैं जहाँ लोगों को पाताल की सुरंगों जैसे कुँओं से पानी खींचना पड़ता है या दूर-दूर से पानी ढ़ोकर लाना पड़ता है। कई इलाके ऐसे हैं जहाँ के लड़कों के साथ लड़की के माता-पिता अपनी लड़की की शादी नहीं कराना चाहते। कौन माँ-बाप चाहेंगे की उनकी लड़की दूर-दूर से पानी ढ़ोकर लाने में ही जिंदगी गुजारे? इसलिए ऐसे इलाकों के लड़कों की शादी मुश्किल से ही हो पाती है। ऐसे इलाकों में पानी की बचत करने के लिए लोगों को अनेक उपाय करने पड़ते हैं। जैसे बच्चे को किसी टब जैसे बड़े बर्तन में नहलाकर

वहीं पानी पशुओं को पिलाना, आदि। देश में ऐसी भी जगहें हैं, जहाँ के लोग सुरक्षित पेय जल के अभाव में तालाब आदि का दूषित जल पीकर अनेक प्रकार की बीमारियों का शिकार होते जाते हैं।

समाज में एक वर्ग ऐसा है जो अपनी रोज की आवश्यकताओं के लिए न्यूनतम मात्रा में भी पानी नहीं पा सकता, दिन में एक डेढ़ घंटे के लिए खोल दिए जाने वाले किसी सार्वजनिक नलके से उस थोड़े से समय में उन सभी लोगों को पानी भर लेना होता है। इस संघर्षमय प्रयास में लोग आपस में लड़ते , झगड़ते हैं, और अंत में गालियों, श्रापों, कसमों, और प्रतिज्ञाओं का घमासान शुरू हो जाता है। किसी-किसी दिन तो ट्रक आ जाते हैं, पुलिस उतरती है, जेल और बेल से आगे बढ़कर कहानी अदालत तक पहुँच जाती है। इससे पारस्परिक विद्वेष फैलता है और उन लोगों का जीवन यातनामय हो जाता है। पानी को लेकर उन लोगों की अनेक करुण कहानियाँ होती हैं, और उनको सुन-सुनकर लोगों के दिल पत्थर हो गए हैं। वैसे सुनने वाला भी कोई नहीं है।

दूसरी तरफ एक ऐसे वर्ग के लोग भी हैं, जो बंगलों में रहते हैं, उनके बंगलों के बगीचे खुब हरे-भरे रहते हैं, बगीचे में लगे नल में से जितनी देर तक लाइन खुली रहती है, उतनी देर तक पानी बहता ही रहता है। नीचे की टंकी में पानी भर कर पंप से ऊपर की टंकी में पानी चढ़ाते हैं, मुनिसिपालिटी वाले इन बंगलेवालों के नल बंद नहीं करते। लोग तीन-तीन दफा नहाते है, चार-पाँच बार हाथ-मुंह धोते हैं, चार प्याले भी धोने हो तो आधे घंटे तक धार छोड़ते है, बाथरूप जब भी जाते, घंटों पानी बहाते हैं, फर्श धोने में, अपनी-गाडियां धोने में जितने पानी का अपव्यय करते हैं, उसका कोई हिसाब नहीं। इतना होने पर भी इन साधन संपन्न लोगों में अत्यंत कठिन जीवन जीने वाले उन अभावग्रस्त लोगों के प्रति कोई सहानुभूति नहीं होती। उन लोगों के लिए वे कुछ भी नहीं करना चाहते बगीचे में, बाथरूम में और अन्यत्र पानी बहा देंगे, पर झोंपडोंवालों को पानी नहीं देना चाहते। दया-ममता या सामाजिक-न्याय की भावना उनमें नहीं होती। इस वर्ग के लोग आवश्यकता पड़ने पर निर्धन लोगों को अपने प्रयोजन के लिए इस्तेमाल करने में भी नहीं चूकते। "प्राणधारा " कहानी के राव साहब ने सस्ती जमीन खरीदकर जहाँ अपना बंगला बनवाया था, वहाँ शुरू में बिजली या पानी की सुविधा नहीं थी। आस-पास के झोपडों वालों को इकट्ठा करके उन्होंने एक पक्के महजरनामे पर वहाँ के तीनों बस्तियों के लोगों से दस्तखत या अंगूठे के निशान लिए थे और उपभोक्ताओं के रूप में उन सब को दिखाने के बाद मुनिसिपालिटी पर दबाव बनाकर अपनी जमीन और अपने बंगले के लिए पानी और बिजली की सुविधा प्राप्त कर ली थी। इन सुविधाओं के मिलने के बाद उनकी जमीन की कीमत कई गुना बढ़ गई थी और वे खुब संपन्न हो गए थे। जिन लोगों की सुविधा की बात कहकर उन्होंने अपने लिए पानी और बिजली की सुविधा करवा ली थी, उन झोंपड़ोंवालों को भी वह सुविधा उपलब्ध हो, इसकी चिंता उनको नहीं है। इसी को कहते है, नदी पार करने के बाद नाव जला देना।

कहानी में सार्वजनिक नल से पानी भर लेने की आशा छोड़कर अम्माजी, सत्यवती और तविटम्मा कलसा-भर पानी मांगने राव साहब के बंगले पर पहुंचती हैं, तो वहाँ शेरों जैसे आदमकद कुत्ते भंयकर रूप से भौंकते हुए उनकी तरफ उछल पड़ते हैं। आमतौर पर यही होता है। किसी बड़े आदमी की ड्योढी पर जाओ, तो घरवालों से पहले उनके कुत्ते ही अगुवानी करते हैं। फिर एक अच्छा-खासा नाटक शुरू होता है। अम्माजी और अपने भाई के प्रणय प्रसंग की कल्पना करके राव साहब की सुकुमारी बेटी अम्माजी की ओर अर्थपूर्ण दृष्टि से देखती है और पूछते हुए कि "पानी के लिए ही आई हो?" मजाक करती है जैसे अम्माजी पानी के लिए नहीं, अपने प्रेमी से मिलने आई हो। इसके बाद घर के सब बच्चे उन लड़कियों को देखकर खुब हंसने लगते हैं। अम्माजी उन लोगों के इस तरह हंसने का कारण

समझ लेती है। लेकिन बेचारी कुछ नहीं कह पाती। बर्दाश्त कर जाती है। गरीब का गुस्सा अनर्थकर जो होता है! कैसी निर्दयता है!

अम्माजी उस बढ़ई की बेटी है, जिसने बंगला बनते समय बहुत दिनों तक उसमें काम किया था और एक दिन अपनी बेटी को दिखाकर राव साहब से विनती की थी कि यह लड़की जब भी पानी के लिए आए, वे एक कलसा भर लेने दें और राव साहब ने उसके लिए हामी भी भरी थी। लेकिन व्यवहार में बेचारी अम्माजी की उपेक्षा होती है उसके साथ उपहास होता है। वे कभी "चलो, भर लो, " कहते तो कभी कहते, "अब नहीं, बाद में आना "। कभी कोई कहता "भर लो। " तो काई मना कर देता। इस तरह अम्माजी से खिलवाड़ कर वे अपना मनोरंजन करते। बिल्ली के लिए खिलवाड़ और चूहे के लिए प्राणसंकट वाली बात हो जाती। लेकिन लाचारी गरीब आदमी से क्या नहीं कराती? लाचार होकर ही अम्माजी सत्यवती और तविटम्मा के साथ राव साहब के बंगले पर गई थी और वहाँ वही हुआ, जो हमेशा होता आया है। लेकिन जाए तो जाए कहाँ? कहीं भी जाओ, आधे मील से कम नहीं था और वहाँ भी पानी मिलेगा, इसका कोई ठिकाना नहीं था।

इन बंगलेवालों के पास पानी न देने के बहुत बहाने होते हैं। वृद्धा कहती है – "आज दया दिखाकर पानी दे दो, तो ये कल फिर हमारे ही घर पर आ धमकेंगी। एक को दे दो तो सौ को देना पड़ेगा। बाद में बुरा बनने से तो शुरू में बुरा बनना ज्यादा अच्छा है। "और उन लोगों पर कुत्ते छोड़ने की धमकी देती है।

इतने में सड़क का नल बंद होने पर खाली कलसे लिए दूसरी स्त्रियाँ भी पानी के संधान में वहाँ पहुँच जाती हैं। भीड़ बढ़ती है, रार बढ़ता है और उस भीड़ में से अप्पायम्मा नाम की स्त्री दोनों पक्षों के बीच मध्यस्थता करते हुए अपनी व्यवहार कुशलता और वाक्चातुरी से अपने लिए और अपने साथ की स्त्रियों के लिए पानी ले लेनी की अनुमति पा लेती है। इस प्रकार बहुत देर बाद उस दिन के लिए समस्या का समाधान हो जाता है। लेकिन यह सब कब तक चलता रहेगा?

संघ'ी का स्वरूप और कार्य कुशलता

ऐसी असहाय स्थिति में भी ये दबे-कुचले लोग अपने आक्रोश और संघर्षशीलता का प्रदर्शन करते है और अपने कार्य को साधने का कौशल भी रखते हैं यह बात इस कहानी में लेखक ने स्पष्टत; दिखाई है। जहाँ सत्यवती इस वर्ग के आक्रोश और आक्रमक प्रवृत्ति को दर्शाती है, वहाँ अप्पायम्मा इस वर्ग के कार्यकौशल को प्रकट करती है। वृद्धा द्वारा कुत्ते छोड़ने की धमकी दिए जाने पर सत्यवती में भय के बदले आक्रोश जागता है। जोश के साथ आगे बढ़कर वह कहती है, "सड़क पर खड़े लोगों को कुत्तों से कैसे कटवाओगी, यह मैं भी देखती हूँ। " बाद में वह मन में कहती है - पानी तो मिलने से रहा। अब कम-से-कम रार ही क्यों न बढ़ाऊँ? और दूर से आ रही अपनी साथिनों को पुकार -पुकारकर कहती है " अरी, आओ, तु भी!ये लोग हम पर कुत्ते छोड़ रहे हैं। " फिर माली को चुनौती देते हुए कहती है, "अरे, ओ बुड्ढे, अगर तू मरद है, तो आज कुत्तों से हमें कटवा,! तेरे घर में आए हैं या तेरे दरवज्जे पर आए हैं हम? किस बात के लिए कटवाएगा बता न तू! " जब वृद्धा कहती है कि उसका बेटा घर पर होता तो उन लोगों की खबर लेता, तो वह कही है," क्यों, तुम्हारा बेटा होता, तो क्या करता? हाथ-पैर बांधकर जेल में डलवाता, यही न? अब यह काम तुम्ही करवा डालो न! ..और झूठ-झूठ का मुकदमा भी चला देना! .....दुनिया भर का पानी तुम्हारे जैसे लोगों के लिए ही पूरा नहीं पड़ता। मुनिसिपालिटी वाले कहाँ से लाकर देंगे? " सत्यवती का यह विद्रोही स्वर केवल इसी कारण नहीं कि वह शहर में पली है। यह उसके व्यक्तित्व की एक विशेषता भी है। क्योंकि अम्माजी भी शहर में ही पली है और वह ऐसा

आक्रोश व्यक्त नहीं करती। सब कुछ देखती जाती है और ऊपर से कुछ नहीं कहती। लेकिन सामान्य रूप से शांत और दबी-दबी रहने वाली अम्माजी के मन में भी आक्रोश है, इस बात का पता तब लगता है, जब उसे देशकर राव साहब के बच्चे देर तक हंसते हुए लोट्पोट होते रहते हैं और सत्यवती उन लोगों के इतना हँसने का कारण पूछती है। वह ऊपर से कुछ नहीं कहती, पर मन में यह जरूर कहती है, "तीनों जून जेवनार पैरों के पास आ जाए और करने कोई काम नहो, तो बखत कटेगा कैसे? यही कारन है। "

अपनी आक्रामकता से जहाँ सत्यवती अपने शत्रु पक्ष को आतंकित और दुर्बल बना देती है, वहाँ अधेड़ उम्र की अप्पायम्मा अपने व्यवहार द्वारा वृद्धा का विश्वास प्राप्त कर लेती है और मौके का लाभ उठाकर मध्यस्थ बनकर दोनों पक्षों में संधि करवाने वाली या विवाद में सुनवाई करके फैसला सुनानेवाले जज का दर्जा हथियाकर फैसले के अंदाज में वृद्धा से पूछती है, "आखिर तुम क्या कहना चाहती हो माई?" अप्पायम्मा का स्वर सुनकर वृद्धा को लगने लगता है कि उसकी पक्षधरता में बदलाव आ गया है। फिर अप्पायम्मा अंतिम चेतावनी-सी देती हुई पूछती है, "पानी देना है या नहीं, यह बताओं।" अप्पायम्मा का स्वर बदला हुआ लगा, तो वृद्धा दुविधा में पड़ जाती है और संधि का प्रस्ताव-सी रखती हुई पीछे से वृद्धा की पोती कहती है, "तुम लोग इतना ऐंठकर बात करोगी तो नहीं देंगे। अच्छे तरीके से बात करोगी तो सोचेंगे। " इस पर वृद्धा और उसके घर के लोगों के अहं की तुष्टि करने और उनमें सहानुभूति जगाकर विवाद को अपने पक्ष में कर लेने के लिए अप्पायम्मा दीनता का प्रदर्शन करती हुई कारुधिक स्वर में कहती है, "ऐंठ ? ऐंठ? मैया मेरी, हमारे पास है ही क्या, जिससे आपके सामने ऐंठ दिखाएं? सकल को लेकर ऐंठें या सूसरत को लेकर ऐंठें? या हमारे पास जमीन-जैदाद, पैसा-कपड़ा आप लोगों से जादा है, इसलिए ऐंठें? क्या देखकर आप लोगों के सामने हम ऐंठेंगी बताओ? ये छोकरियां कुछ जानती नहीं, इसलिए बड़बड़ कर रहीं है। " अप्पायम्मा की नम्रता, दीनता और कौशल का असर हुआ और वृद्धा का मन भी शांत हुआ। वह पानी लेने की अनुमति दे देती है। अनुमति मिलना था कि अप्पायम्मा फाटक खोलकर अंदर ऐसे घुसती है जैसे अपने ही घर में घुस रही हो..... इतना ही नहीं, "आओ भाई, आओ। " कहकर बाकी सबको भी बुलाती है और संकोच में अपनी जगह खड़ी अम्माजी और सत्यवती की ओर देखकर छिपाकर आंख भी दबाती है। फिर पानी का महत्व और उसकी पवित्रता सबको समझाती हुई सी कहती है, "आओ, लड़कियों, तुम भी आओ। गंगा है! जीने के लिए सबसे पहले गंगा चाहिए। उसके बाद ही अड़ना-अकड़ना सब, पहले पानी भर लो। "

साधनहीनों की विवशता

इन शोषित-पीड़ित वर्ग के लोगों को कदम-कदम पर अपने आत्मसम्मान को दबाना पड़ता है, और अनेक अपमानजनक परिस्थितियों से समझौता करके चलना पड़ता है। "प्राणधारा " कहानी में अप्पायम्मा वृद्धा से पानी भर लेने की अनुमति जब पा लेती है और दूसरी महिलाएं पानी भरने आगे बढ़ती हैं, तब तविटम्मा और अम्माजी भी हिलीं। तविटम्मा बड़ी मायूसी से कहती है, "इस धूप में जादा नहीं तो कम-से-कम दो-घड़े पानी तो चाहिए ही चाहिए। जाने अभी कितने दरवज्जे चढ़ने होंगे और कितने लोगों से "छी-छी " सुननी पड़ेगी। कितने झमेले हैं! "जब वह सत्यवती से यह पूछती है कि हर बरस ही पानी की ऐसी समस्या रहती है या इसी बरस ऐसा है, तो सत्यवती जवाब देती है, "जब से पैदा हुई हूँ। असल में इस बस्ती से लगा सनीचर ही ऐसा है। " कहानी का अंत भी इसी विवशता की दुखद स्थिति की ओर स्पष्ट संकेत दे रहा है - "चिढ़ें या झिड़कें या कुत्तों और पुलिस को दिखाकर डराएं, धनहीनों का धनवानों की ड्योढ़ी पर जाकर मिन्नतें किए बगैर, उन लोगों को सताए बगैर काम नहीं चलता। अगले दिन यह कहानी एक बार फिर शुरू होती है। वे लोग गेट खोलेंगे नहीं और ये लोग गेट छोड़ेंगी नहीं। "

निर्धनों के लाचार और कुपोषण का शिकार होने की स्थिति पर भी लेखक ने अपनी कुछ मार्मिक टिप्पणियां की हैं। जैसे- "अम्माजी की आयु 17 या 18 की है। पर देखने में वह 14 -15 साल की लगती है। " लेकिन वह अपनी औकात से खूब बड़ा कलसा हाथ में लेकर पानी के लिए निकल पड़ती है। " माली पर उनकी टिप्पणी है - "वह बड़े साहब के दिए हुए रेशमी कुर्ते में दुबला और छोटे बाबू के पहनकर छोड़े हुए खाकी निकर में मोटा मालूम हो रहा है। "

स्त्रियों के प्रति संवेदना की भावना

कहानी में अधिकांश पात्र स्त्रियाँ हैं। ऐसा होना स्वाभाविक भी है। क्योंकि घर में पानी भरने का दायित्व प्राय; स्त्रियाँ ही निभाती रहती हैं। पुरुष अपने काम से बाहर निकल जाते हैं, तो स्त्रियों को ही घर के काम के अलावा बच्चों को संभालना, पानी भरना आदि दूसरे अनेक काम भी करने पड़ते हैं। तविटम्मा ऐसी स्त्रियों का प्रतिनिधि है। वह दूध पीते बच्चे की माँ है। बच्चे को घर में सुलाकर वह पानी के लिए नलके पर जाती है। बाहर जाने पर ऐसी स्त्रियों को घर में सो रहा बच्चा जग गया, तो क्या होगा, इसकी चिंता सताती रहती है। घर में पंखा तक नहीं है। वह गर्मी के मारे आंचल गिराकर उफ-एफ करती हुई हवा झलने लगती है। क्योंकि गर्मी ऐसे लग रही है जैसे कड़ाही में डालकर उसे कोई तल रहा हो। तविटम्मा द्वारा लेखक ने संतान के प्रति माँ के स्नेह का एक सुंदर चित्र भी उपस्थित किया है। बच्चे के जोर-जोर से रोने का कारण वह इस प्रकार बताती है, "(दूध) ठीक से पूरा नहीं पड़ता, I असल में रोना इसलिए नहीं है। अपनी जान को यह पसीना भी तो एक है न! धार पर धार वह रहा है — मुँह में नमक लगता है, तो बच्चों को अच्छा नहीं लगता। " इस पर लेखक की टिप्पणी है, " बेजुबान बच्चों के मन की बातें सबको मालूम नहीं होतीं। माँ को कैसे मालूम हो जाती हैं, यह अभी माँ न बनी सत्यवती समझ नहीं सकी। तविटम्मा ने आंचल से मुँह, गरदन, कंधे और छाती खूब अच्छी तरह पोंछ लिए और रोती हुई बच्ची को अपना दूध पिलाने लगी। बच्ची शांत होकर दूध पीती रही। "

तेलुगुभा"ाा समाज की एक विशि"ट सांस्कृतिक परंपरा का संकेत

मटका सिर पर उठाकर आ रही चालीस वर्षीय महिला को अम्माजी "अत्ता" कहकर पुकारती है और एक कलसा पानी देने के लिए चिरौरी करती है, तेलुगु में "अत्ता " शब्द के दो अर्थ हैं। बुआ और सास। आंध्र में बुआ के बेटे से लड़की का और बेटी से लड़के का विवाह हो सकता है। गाँव में लड़के -लड़कियाँ प्रायः सभी पराई स्त्रियों "अत्ता " और पराए पुरुषों को "मामा " कहकर पुकारते हैं। आजकल की "आंटी " और "अंकल " की तरह तेलुगु में "मामा " शब्द के भी दो अर्थ हैं - (1) मामा (2) ससुर। इसीलिए वह महिला अम्माजी को इस प्रकार ताना देती है — "वाह री मेरी रानी वाह! किस गांव का नाता है री मेरी बहू! मेरा कौन बेटा ले आया है तुझे?

इसके अलावा "अम्माजी " वाला नाम तेलुगु प्रांत के कुछ इलाकों में लड़कियों को दिया जाता है।

कहानी में गाँव और शहर

"प्राणधारा " कहानी में गाँव और शहर दोनों समाज है और दोनों समाजों की अपनी-अपनी विशिष्टताएं भी स्पष्ट दिखलाई देती हैं। गाँव के बहुत लोग जीविका की तलाश में शहर आकर बसने लगते हैं। फिर भी अपने गाँव से उन लोगों का संबंध बराबर बना रहता है और उनकी ग्रामीण मानसिकता भी बनी रहती है। गाँव में हर व्यक्ति की जाति का पता दूसरों को होता है और यह विवरण ग्रामवासियों के लिए बहुत महत्वपूर्ण भी है। लेकिन शहर में

व्यक्ति की जाति का इतना महत्व नहीं होता। इसलिए लोग बहुतों की जाति को नहीं जान पाते। कहानी में राव साहब की जाति के बारे में तविटम्मा के पूछने पर सत्यवती कहती है, "शहर में जात-पांति की बात जल्दी से पता नहीं चल पाती, यहाँ बात सारी ओहदे की होती है। " राव साहब के बंगले पर इन लोगों को देखकर कुत्ते भौंकते हैं, तब गाँव से आई तविटम्मा बहुत डर जाती है तो शहराती सत्यवती शहर के लोगों के तौर-तरीकों पर यह टिप्पणी करती है - "बस, यही होता है री! इस शहर में किसी भी बड़े आदमी की ड्योढी पर जाओं, घरवालों से पहले उनके कुत्ते अगुवानी करते हैं। हम सहरातियों की यही अगुवानी है।" बंगले के बड़े-से बगीचे में अम्माजी के बाप द्वारा लगाए गए कटहल के दो पेड़ों को छोड़कर पूरे बगीचे में बांस, सुपारी की झाड़ियां, क्रोटन आदि ही लगे हैं। किनारे रखे गमलों में कैक्टस और मूंज जैसे राक्षसी जाति के पौधों को देखकर तविटम्मा को बहुत अचरज होता है। गाँव से आई तविटम्मा सामान्य ग्रामवासियों की उपयोगितावादी दृष्टि का परिचय देती हुई कहती है, "हमारे गाँवों में बगीचे ऐसे नहीं होते। बगीचा कहीं और मकान कहीं और होता है। इतना बड़ा बगीचा किसी के पास होता, तो एक पूरा का पूरा घर मजे से गुजारा कर सकता है। लकड़ी, डंठल, घास-पत्ते और मौसम में फल-फूल, हर चीज का दाम मिलता है। "

कहानी में नाटकीयता

"प्राणधारा " कहानी में आद्यंत नाटकीयता बनी हुई है। पात्रों के बीच संवादों के द्वारा कहानी आगे बढ़ती है। कथाक्रम में कहानीकार का हस्तक्षेप बहुत कम है। वे पात्रों को हमारे सामने उपस्थित करके मानों स्वयं एक दर्शक बन जाते हैं और पात्र अपने संवादों, अपनी चर्या-प्रतिचर्या। घात-प्रतिघात द्वारा घटनाक्रम को आगे बढ़ा ले जाते हैं .. इसलिए कहानी का क्रमिक और स्वाभाविक विकास होता जाता है। सार्वजनिक नल के पास का दृश्य हो या राव साहब के बंगले के पास देर तक चली कशमकश दोनों जगह यही होता है। इस कारण कहानी में अत्यंत नाटकीयता का समावेश हो गया है, जो कहानी की रोचकता को बढ़ाता है। कहानी में बोलचाल की सरल और पात्रोचित भाषा का प्रयोग इसकी एक और विशेषता है।

4.4 सारांश

तेलुगु की प्रगतिवादी विचारधारा से प्रभावित होने वाले और अपने विचारों और लेखन से उसे प्रभावित करने वाले साहित्यकारों में कालीपट्नम रामाराव का महत्वपूर्ण स्थान है। वे साहित्य में सामाजिक यथार्थ के समर्थक हैं। साहित्य में जनता का चित्रण वे देखना चाहते हैं। समाज में मानव मूल्यों को स्थापित करने के लिए रूढ़िवादी और सामंतवादी शक्तियों से संघर्ष करती हुई सामाजिक शक्तियों का चित्रण इन्होंने अपनी कहानियों में किया है। इनका मार्ग आध्यात्म का नहीं हैं। क्योंकि वे मानते हैं कि यह मार्ग हमारे जन-साधारण की समस्याओं को सुलझाने में सहायक नहीं हो सकता। अन्य प्रगतिशील साहित्यकारों की तरह ही ये विषय को शैली से अधिक महत्वपूर्ण मानते हैं। वे मानते हैं कि विषय की जीवंतता से शैली में शक्ति आती है। विषय सामाजिक हो, और वह जन जीवन के यथार्थ से संबद्ध हो, तभी वे किसी रचना को उपयोगी मानते हैं। रामाराव जीवन के बारे में, मानव मन की विभिन्न प्रवृत्तियों के बारे में असाधारण समझ रखने वाले लेखक हैं। इस कारण इनकी रचना "प्राणधारा " अनेक कारणों से एक महत्वपूर्ण कहानी है। यह एक यथार्थवादी कहानी है, जिसमें निर्धन लोगों के जीवन की विकट स्थितियों और भारतीय समाज के निर्मम और घृणास्पद यथार्थ की ओर पाठक का ध्यान आकृष्ट किया गया है। समाज के साथ रचनाकार के संबंध को बराबर ध्यान में रखने वाले लेखक ने शोषण और अत्याचार पर आधारित इस

व्यवस्था में पानी जैसे प्राकृतिक और मानव जीवन के लिए अनिवार्य संसाधन की उपलब्धता के मामले में भी किस प्रकार का अन्याय हो रहा है, इसका प्रभावी चित्रण इस कहानी में किया गया है। लेखक ने चेताया है कि ऐसी अन्यायपूर्ण और अमानुषिक व्यवस्था ज्यादा दिनों तक नहीं चलेगी निचले तबके के लोगों को आसानी से पानी नहीं मिलता था, कि वे "अछूत " माने जाते थे। "अछूत " माने जाने वाले लोगों के पानी के संकट का मार्मिक चित्रण करने वाली प्रेमचंद की प्रसिद्ध कहानी "ठाकुर का कुआँ " इस संदर्भ में हमें बरबस याद आती है। उस में जोखू नाम का "अछूत " बीमार है और उसे प्यास लगी है। घर में जो पानी है, वह सड़ा हुआ है और बदबूदार हो गया है। रात का वक्त है। उसकी पत्नी गंगी चोरी-चोरी "अछूतों " के लिए निषिद्ध ठाकुर के कुएं पर पानी भरने जाती है। अगर इस समय वह पकड़ ली गई तो फिर उसके लिए माफी या रियायत की रत्ती भर उम्मीद नहीं होगी। प्रेमचंद उस घटना का इस प्रकार वर्णन करते हैं - "अंत में उसने देवताओं को याद करके कलेजा मजबूत किया और घड़ा कुएं में डाल दिया। घड़े ने पानी में गोता लगाया, बहुत ही आहिस्ता, गंगी ने दो-चार हाथ जल्दी-जल्दी मारे, घड़ा कुएं में मुंह तक आ पहुँचा। कोई बड़ा शहजोर पहलवान भी इतनी तेजी से उसे न खींच सकता था - गंगी झुकी कि घड़े को पकड़कर जगत पर रखे कि एकाएक ठाकुर साहब का दरवाजा खुल गया। शेर का मुंह इससे अधिक भयावह न होता .... गंगी के हाथ से रस्सी छूट गई। रस्सी के साथ घड़ा धड़ाम से पानी में गिरा और कई क्षण तक पानी में हलकोरे की आवाजें सुनाई देती रहीं। ठाकुर "कौन है, कौन है? " पुकारते हुए कुएं की तरफ जा रहे थे और गंगी जगत से कूद कर भागी जा रही थी...घर पहुँचकर देखा कि जोखू लोटा मुंह से लगाए वहीं गंदा पानी पी रहा है। "

समसामयिक जीवन की झलक देने वाली यह कहानी पाठक को किस पक्ष का समर्थन और संवर्धन करना चाहिए, इसका स्पष्ट संकेत देती चलती है। इससे लेखक का वैचारिक परिप्रेक्ष्य भी स्पष्ट होता जाता है।

4.5 अभ्यास

1) "प्राणधारा " कहानी के आधार पर कालीपट्नम रामाराव की सामाजिक दृष्टि पर विचार कीजिए।

2) "प्राणधारा " कहानी के आधार पर इस उक्ति के औचित्य पर विचार कीजिए कि "रामराव अपने आवेश को छिपाकर पाठक में आवेश पैदा करने वाले कथाशिल्पि है। "

3) "प्राणधारा " कहानी में जहाँ अम्माजी सहिष्णु, शांत और नियतिवादी वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है, वहाँ सत्यवती आक्रोशपूर्ण विद्रोही वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है " इस उक्ति पर विचार कीजिए।

4) क्या यह माना जा सकता है कि "प्राणधारा " कहानी विरल होते जा रहे प्राकृतिक संसाधनों की सुरक्षा के प्रति तथा सामाजिक न्याय के प्रति पाठक को सजग करती है?

5) "प्राणधारा " कहानी में नाटकीय तत्व पर विचार कीजिए।